सन्निवेश—तीन

सम्पादक
ज्ञान भारिल्ल
प्रेम सक्सेना

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए
कल्पना प्रकाशन
कृष्ण-कुंज, बीकानेर

आमुख

प्रतिवर्ष शिक्षक-दिवस के अवसर पर शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर द्वारा राजस्थान के प्रकाशकों के माध्यम से राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं का प्रकाशन कराया जाता है। इस योजना के अंतर्गत अब तक हिन्दी, उर्दू तथा राजस्थानी भाषा की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित कराई जा चुकी हैं। इस वर्ष भी चार पुस्तकों का प्रकाशन कराया जा रहा है जिन में से प्रस्तुत पुस्तक एक है।

विभाग की इस योजना का स्वागत सभी क्षेत्रों में हुआ है यह सन्तोष और प्रसन्नता का विषय है। शिक्षकों की श्रेष्ठ कृतियां इस माध्यम से प्रकाश में आती हैं तथा नए शिक्षक-लेखकों को प्रोत्साहन और प्रेरणा भी मिलती है। यही इस योजना का प्रमुख उद्देश्य है।

यह आशा की जाती है कि शिक्षक दिवस १९७० के अवसर पर प्रकाशित कराई जा रही इन पुस्तकों के पाठकों को इनमें पर्याप्त रोचक एवं उपयोगी सामग्री उपलब्ध होगी तथा वे इसका लाभ उठाएंगे।

राजस्थान के प्रकाशकों ने इस योजना में प्रारम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है और इन प्रकाशनों को सुन्दर बनाने में परिश्रम किया है। [illegible] शिक्षक लेखकों ने भी अपनी रचनाएं भेजकर विभाग [illegible] है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही [illegible]।

हरिमोहन माथुर
निदेशक,
[illegible] एवं माध्यमिक शि[illegible]
राजस्थान, बीकानेर.

अनुक्रम

वेदियों से उठता पवित्र धूम, मन्त्रो ऋचाओं का सशक्त, समवेत स्वर, ध्वनि से अम्बर तक उड़ता हुआ झूम झूम—

> हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत ।
> स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
> य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
> यस्य छाया मृत यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

विशाल नील नभ पर जगमगाते नक्षत्रों से, गहन गंभीर सागर की तरलित शुभ्र लहरों से, कुसुमादपि कोमल और वज्रादपि कठोर, नारियों-नरों के दल छाये चहुंओर । रूप की गरिमा है, शौर्य का तेज पुंज, वियोग-संयोग सजा रसराज का निकुंज, अविचल वज्रदृढ़ता के मध्य उठते सिंहनाद, माधुर्य-वात्सल्य भरा गुंजित भक्ति का निनाद ।

नारी समूह में—

जननी यशोदा-यशोधरा और कौशल्या, कुन्ती के ही समीप पत्नी सती सीता हैं, सावित्री, सत्यभामा, श्रद्धा-सुलोचना हैं, सखी देवयानी-शर्मिष्ठा भी साथ हैं । विरह-विधुरा ब्रज की आराध्या श्री राधे और अश्रुपूत ऊर्मिला भी दीखती हैं साथ-साथ । स्वर्गीय रूप की नवनीत ज्योति से बरबस ध्यान खींचती खड़ी हैं एक साथ सब—शर्मीली-शकुन्तला, दामिनी सी दमयन्ती, उत्पल सी उषा, सुभद्रा-संयोगिता । भक्तिमती मरु की मदाकिनी मीरा के साथ गौतमी, अहिल्या-अनसूया तो हैं ही पर भीलनी भी खड़ी है पास । त्याग-मूर्ति तारामती और अन्य रमणी हैं—रुक्मिणी-द्रौपदी, उत्तरा······किन्तु सौभाग्य-सुगन्ध से सिक्त चूड़ियों की खनखनाहट में नंगी तलवारें साधे ये भी हैं—सिंहनी-सी कैकेयी, दर्पभरी दुर्गा और लक्ष्मी वह मरदानी ।

और यह कैसा दृश्य ? कितना प्रकाश है ! कितनी वेगवती ज्वाल, लपलपाती लपटें आकाश में उठती हुई । रूप की ज्योति से जगमगाती, सोलह सौ सुकुमार कुल शोभिनी रानियों के साथ हंस हंस कर जलती हुई राजरानी पद्मिनी ।

उसी प्रकाश में—

एक ओर है हाथ में मद रक्त रंजित कृपाण और मधु पूरित ममत्वमय आँचल लिए—पन्नाधाय ! और दूसरी ओर स्वरक्त स्नाता निज कटे शीश की, सुहाग-सिन्दूर सिंचित सेनानी भेंट करती—साहस और [illegible] प्रतिमूर्ति हाड़ी रानी ।

और उस ओर उस पुरुष समाज में—

समिधा समर्पित, अनुष्ठान-अग्नि के पावन स्पर्श से सुवासित यज्ञ मंडप में, वेदविद्, त्रिकालज्ञ ऋषिगण देव वन्दनरत, साधना-आराधना के अविचल आसन में जमे, चिन्तनमग्न स्मृतिकार—आदि आर्य पुरुष मनु। कश्यप, दधीचि, अत्रि, विश्वामित्र व वशिष्ठ, भारद्वाज, दुर्वासा, गौतम, शांडिल्य, भृगु, शृंगी, कण्व, पाराशर तपःपूत योगियों के विस्तृत समुदाय में न्याय, सांख्य वैशेषिक, योग, वेदान्त-मीमांसा के मन्थन का गहन रव।

रत्न जटित बहुरंगे वस्त्रों से सज्जित हैं देवजयी दशरथ, दुष्यन्त और राजा नल। शील-शक्ति-सौन्दर्य के समन्वित स्वरूप राम आदर्श-मर्यादा के दिव्य ज्योति पुञ्ज से, साथ बन्धु-मीत धर्म नीति में पगे हैं—हनुमान, सुग्रीव-जामवन्त और सुमन्त्र, चरण पखारने को केवट भी खड़ा है पास। दिव्य गुरु परशुराम के समीप नत विदेह, त्रेता के मंडप में दीखते हैं सस्नेह।

और उस ओर—

कदम्बों की छाया में—कालिन्दी तट पर, स्वर्ग रचाते जो नित वंशीवट पर—वैभव प्रभा के पुंज, कर में सुदर्शन सजोये हैं। चहुं ओर खड़े हैं द्वापर की परिधि बीच, जय घोष-दुंदुभि गुंजाते हुए परमवीर। गरिमामय गुरु द्रोण के समीप पांडव भी, कौरव भी वचनबद्धता के निज प्रदर्शन में रत हैं। पाताल-गंगा की पावन जल धारा का सलिल पान करते भीष्म शरों की शैया पर शान्त दीख पड़ते हैं। एकलव्य दूर खड़ा अब भी गुरु भक्ति में लीन है और ये सुदामा अपनी जीर्ण पोटली में तन्दुल सम्भाले—बचपन की स्मृतियों में डूबते उतराते अपने सखा श्यामसुन्दर की ओर बढ़े चले जा रहे हैं।

यह क्या ! एक द्वार खुला—

घोड़ों की टापों का स्वर ! तनी हुई तलवारें, लहराते भाले, झनझनाते शिरस्त्राण गात पर सम्भाले, शतसहस्र विकट भट, मूछों पर दिये लिये के मे, होड़ कर रहे हैं धारातीर्थ में जाने में। मद के प्रहरी पराक्रमी हल्दी घाटी की रक्त सनी न उठी—

त मराठी विरची-कृपाणों

से सजे हुए दुर्ग प्रतिध्वनित हुए—

हर हर महादेव !!

एक द्वार और खुला—

पंक्तिबद्ध नारी-नर बोलते हैं एक स्वर। तरुण-वृद्ध-युवा प्रौढ़, भिन्न-गात, भिन्न वर्ण, मिलकर धरते चरण। आगे विशाल ध्वज थामे वह जीर्ण पुरुष, तीन रंगों की समन्वित छाया में, शुभ्र वर्ण सूत के शान्ति रूप धागों से कोटि-कोटि अनुगामी जनगण को बाँधता, कदम-कदम, शान्त मन। पीछे हैं अस्थिर, असहाय अपार जन समुद्र। हथकड़ी-बेड़ियों की झनझनाहट में झूलते, क्रूरता से कसे हुए, तरुण ताजा रक्त से भीगे हुए फाँसी के फन्दे और असह्य मासूम चीखों को आरपार भेदती गनमशीन की गोलियों की बौछारों पर बारम्बार पछाड़ें खाती हुई ध्वनि—

इन्कलाब जिन्दाबाद !

इन्कलाब जिन्दाबाद !!

सहसा प्रकाश हुआ—मन्दिर के प्रांगण में। दमन के दुर्दान्त शिकन्जे से निकल कर फहराता चक्रध्वज आकाश में उदित हुआ। सदियों की बेसुध नशीली नींद से जागकर लाल किले ने फिर से अंगड़ाई ली। शालीमार-निशात पर फिर से स्वर्ग उतरा और अलकापुरी का वैभव चहुँ-दिश बिखर उठा—

आरती की बेला में !

साधनारत श्रम के कर्मठ कुदाल कर मंदिर की सूनी प्राचीर को सजाने लगे। विद्युत की जगर-मगर, बहते जल की कल-कल, अजस्र गति दीन यन्त्रों की सृष्टि बनी, सृजन का नवम स्रोत बाहों में उमड़ पड़ा, दान सहस्र कंठ-गान नवम गीत गाने लगे—

आरती की बेला में !!

मन्त्रों का पावन स्वर, मंत्रों की गुरुतर काव्य-गीत-कथा रहित, वेद शास्त्र शास्त्रकार; चन्दन और रोली से सज्जित कुमकुमा थाल, रक्त धार शोभित बलिदानों की मुस्कान, अधरों पर गान लिये, प्राण में पुकार लिये, युग युग से कोटि-कोटि नारी-नर दीप लिये, श्वास-श्वास अर्पित कर, भावना समर्पित कर, भारती की अर्चना में—वन्दना में हुए रत—

आरती की बेला में !!!

[illegible]

को बाहे फैलाता है। जननी का अश्रुस्नेह शबलित उर उमड़-उमड़ संस्कृति के गौरवमय गान दुलराता है। गंगा का पानी अपनी कीर्ति की कहानी वह जानी पहिचानी शुभ वाणी सुनाता है। किन्तु हाय! हाहाकार चीत्कार बार-बार अग्नि विध्वंस, रक्तपात और नाश लिये भूख, बेकारी, गरीबी की घनी छाया से जन-गण के मन को फिर फिर झुलसाता है—

आरती की बेला मे !!!!

मंगलमय जीवन हो, अमृतमय हर तन हो, सिद्ध हो हरेक श्रम श्रम मे सिक्त हर कण हो, मजबूत घर-घर हो गली-गली, गांव-गांव, नगर-नगर सुन्दर हो; सुख हो अनन्त-आनन्द निश्चय हो, प्रियतम स्वरों मे गूंज उठे बाट-घाट और प्रीति की बाहों मे झूलता हर पनघट हो, चाह लिए चरण-चरण, बाहु बंधे मिलन क्षण, स्वर्णमय हरेक दृष्टि, सृष्टि बन गीत मुखर—

आरती की बेला मे !!!!!

श्वास-श्वास मिले चलें, प्राण-प्राण मिले पलें, गात भिन्न, वर्ण भिन्न किन्तु हाथ मिले उठें जननी पद-अर्चन में सभी माथ मिले झुकें, 'मातृ-भूमि गरीयसी' गूंजे भव्य मन्दिर मे, आओ हे! सभी चलें, उज्ज्वल तन-मन करें, ज्योतित जीवन करें—जागृति की बेला में, भारती को नमन करें—

आरती की बेला में !!!!!!

से सजे हुए दुर्ग प्रतिध्वनित हुए—

हर हर महादेव !!

एक द्वार और खुला—

पंक्तिबद्ध नारी-नर बोलते हैं एक स्वर । तरुण-वृद्ध-युवा प्रौढ़, भिन्न-गात, भिन्न वर्ण, मिलकर धरते चरण । आगे विशाल ध्वज थामे वह जीर्ण पुरुष, तीन रंगों की समन्वित छाया में, शुभ्र वर्ण सूत के शान्ति रूप आगे से कोटि-कोटि अनुगामी-जनगण को बांधता, कदम-कदम, शान्त मन । पीछे है अस्थिर, असहाय अपार जन समुद्र । हथकड़ी-बेड़ियों की झनझनाहट में झूलते, क्रूरता से कसे हुए, तरुण ताजा रक्त से भीगे हुए फांसी के फंदे और अगण्य मासूम चीखों को आरपार भेदती गनमशीन की गोलियों की बौछारों पर बारम्बार पछाड़ें खाती हुई ध्वनि—

इन्कलाब जिन्दाबाद !

इन्कलाब जिन्दाबाद !!

सहसा प्रकाश हुआ—मन्दिर के प्रांगण में । दमन के दुर्दान्त शिकञ्जे से निकल कर फहराता चक्रध्वज आकाश में उदित हुआ । सदियों की बेसुध नशीली नींद से जागकर लाल किले ने फिर से अंगड़ाई ली । शालीमार-निशात पर फिर से स्वर्ग उतरा और अलकापुरी का वैभव चहुं-दिश बिखर उठा—

आरती की बेला में !

साधनारत श्रम के कर्मठ कुशल कर मंदिर की सूनी प्राचीर को सजाने लगे । विद्युत की जगर-मगर, बहते जल की कल-कल, असंख्य गतिशील चक्रों की सृष्टि बनी, सृजन का सबल स्रोत बाहों में उमड़ पड़ा, शत सहस्र कंठ-खग नवल गीत गाने लगे—

आरती की बेला में !!

मंत्रों का पावन स्वर, यंत्रों की गुरुघहर, काव्य-गीत-कला सहित, वेद शास्त्र, शस्त्रप्रखर; चन्दन और रोली से सज्जित शुभपूजा थाल, रक्त धार शोभित बलिदानों की मुण्डमाल, अधरों पर राग लिये, प्राण में पुकार लिये, युग युग से कोटि-कोटि नारी-नर शीश विनत, श्वास-श्वास अर्पित कर, भावना समर्पित कर, भारती की अर्चना में—वन्दना

आरती की बेला में !!!

ममत्वमयी माता का आंचल फिर

जगे कि जगती के उपवन में,
कोकिल ने मधु घोली ।
तुम माधव के पाञ्चजन्य,
तुम शिव के अग्नि-त्रिलोचन !

बलिपथ के………

इस उपवन की हर कोपल में
नव कोकिल की लाली ।
हर प्रसून में नव पराग
हर [illegible] में उजियाली ।
जो देवों का सुधा [illegible]
स्वयं पिये विष प्याला ।
काल शीश पर [illegible]
नाचे मयूर मतवाला ।
तुम यौवन के [illegible],
रणचण्डी का [illegible] ।

बलिपथ के · · ·

भारत-भूमि के मस्तक पर
श्रम सीकर [illegible] ।
बलिपथ के नव पथिक पथिक हे !
कोटि-कोटि अभिनन्दन !

हृदय में मंजु वादिनी वीणा, नस-नस और पेशी-पेशी में स्फूर्ति की उमंग—कुछ ऐसा आकार मन की आँखों के आगे खड़ा होता है जब हम वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल्ल का नाम लेते हैं। भय मालूम होता होगा उनके पास तक फटकने में जब यह मूर्ति कभी रौद्र रूप धारण करके अंकुश लिए तीव्र गति से आती होगी।'

—वीर सतसई भूमिका : सहल, गौड़, आसिया

तो इस रौद्र रूप धारी कवि ने, अपने युग के जो गीत गाये वे अंगार जैसी वीरता के गीत हैं। इस अंगार जैसी वीरता का चित्रण कवि ने बाल्यकाल से ही किया है। जब क्षत्राणी के गर्भ से बालिका का जन्म होता है तो जो स्थिति होती है वह यों है—

> हूं बलिहारी राणियां, साचा गरभ सिखाय।
> जाचा हदै तापणौ, हरखै धी हुलसाय॥

मैं उन रानियों पर बलिहारी हूं जो गर्भस्थ संतान को इस प्रकार की ठोस शिक्षा देती हैं कि नवजात बालिका प्रसूता के तापने की अंगीठी को टकटकी लगाकर देखती है (कि यह वही अग्नि है जिससे सती होने या जौहर के समय काम पड़ेगा और इस प्रकार सती होने या जौहर के संस्कार बालिका में जन्म से ही पैदा हो जाते थे)।

और यदि गर्भ में बालक का जन्म होता है तो—

> हूं बलिहारी राणियां, भ्रूण सिखावण माव।
> नाळो बाढण री छुरी, झपटै जणियो साव॥

मैं उन रानियों पर न्योछावर हूं जो अपने बालकों में भ्रूणावस्था में ही ऐसे संस्कार भर देती हैं कि पैदा होते ही शिशु नाल काटने की छुरी पर झपटता है (कि समय आने पर तलवार से काम पड़ेगा और इस समय उपलब्ध शस्त्र तो उठा ही लिया जाय)।

और जब घर के बड़े-बूढ़े कहीं बाहर चले गये तो भी ऐसे ही एक 'छोकरे' ने गजब ढा दिया।

> बाप गयो सं माहिरो, काको आन कढ़ाय।
> मोहि मचाई छोकरैं, बैरी-रै घर धूंब॥

पिता मान लेकर बाहर चला गया और चाचा कुटुम्ब की आन (मर्यादा) के कारण बाहर चला गया तो भी पीछे से छोकरे बालक ने उप-

धरती पर अंगार जैसी वीरता के साधक

कविराज सूर्यमल्ल मिश्रण

• अमरसिंह पाण्डेय

साहित्य-गगन के सूर्य, चन्द्रमा और तारक होने का गौरव तो हिन्दी साहित्य के अनेक कवियों को मिला किन्तु महाकवि 'दिनकर' के शब्दों में 'धरती पर जीने के लिए चाहिए अंगार-जैसी वीरता' के साधक और गायक होने का गौरव प्राप्त करने वाले कवियों मे राजस्थान के महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण का स्थान अन्यतम है।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण अनेक विषयो के प्रकाण्ड पंडित, संगीत के मर्मज्ञ और लोकोत्तर प्रतिभा के अधिकारी प्रकृत कवि थे। 'वंश भास्कर' लिखकर तो उन्होने अपना नाम अमर किया ही, 'वीर सतसई' लिखकर देश भक्ति और त्याग तथा बलिदान की जो व्यंजना उन्होंने की है वह अनुपम है—

> सतसई दोहा मयी, भीसण सूरजमाल।
> जपै मडखाणी जठै, मुणै कायरा साल॥

जब राजपूत अपने क्षत्रियत्व को भूल गये तब मिश्रण ने वीर सतसई का गान प्रारम्भ किया जिसे सुन कर वीर तो मरण का वरण करते ही हैं किन्तु कायरों के हृदय मे भी शल्य (चुभन) पैदा होती है (और वे भी युद्ध करने के लिए उद्यत होते हैं)।

अपने समय मे बूंदी के पांच रत्नो मे से एक सूर्यमल्ल मिश्रण का व्यक्तित्व स्वयं मे अंगार-जैसी वीरता का मूर्तिमान स्वरूप था।

'विशाल काया, दीर्घ अरुण नेत्र, पुष्ट भुजदण्ड, भौहों से मिली हुई मूंछें, मवार कर पट्टी बँधायी हुई दाढ़ी, एक हाथ में नग्न तलवार और

[illegible]
[illegible] । एक व[illegible] के [illegible] भी देखिए —

> [illegible] नरा गढ़ नेड़ा थ्या, बाजी मचाणक घाव ।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

घर के सब लोग जो कहीं [illegible] ([illegible]) में बाहर गये हुए थे और अचानक ही कुछ ऐसी परिस्थिति आ बनी कि शत्रुओं ने घर घेर लिया। किन्तु तभी [illegible] ने [illegible] [illegible] ([illegible]) ने [illegible] तलवार उठाकर शत्रुओं का सामना किया।

विवाह का एक चित्र है—

> ढोल सुणता मंगली, मूछां भूंह चढ़ंत ।
> चंवरी ही पहचाणियो, कंवरी मरणो कंत ॥

विवाह के समय पर मांगलिक ढोल सुनकर भी वर की मूंछें भौंहों से जा लगी हैं, यह देखकर कुमारी ने विवाह वेदी पर ही जान लिया कि वर युद्ध में मरणधर्मा है। एक और चित्र—

> हथलेवै ही मूठ रिण, हाथ पिछाणा नाह।
> लाखां बातां हेकसो, चूड़ो मो न लजाह ॥

पाणिग्रहण के अवसर पर पति की हथेली में तलवार की मूठ के चिह्न (कठोर निशान) का स्पर्श करके ही हे माता ! मैं जान गयी कि मेरा पति मेरे चूड़े को लज्जित नहीं करेगा (या तो युद्ध से विजयी होकर लौटेगा या वीर गति पायेगा)।

और क्षत्राणी का चूड़ा भी तो कोई साधारण चीज नहीं है :

> पूजाणो गज मोतियां, भीडाणो कर मुझ ।
> वीजाणो घण चामरां, है चूड़ो बल तुझ ॥

युद्ध के लिए पति को विदा करते समय क्षत्राणी कहती है कि गजमुक्ताओं से मैंने आपका पूजन किया है, मुझ जैसी वीर बाला का आपने पाणि पीडन किया है। अनेक चवरों से सम्मानित मेरा यह चूड़ा आपका बल बनेगा।

और माता की प्रसन्नता तो देखिये—

> आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय ।
> बहू बलेवा हू लेसै, पूत मरेबा जाय ॥

घर पर एक दिन हर्षोल्लास देखकर ज्ञात हुआ कि पुत्र तो रण में बलिदान होने को जा रहा है और बहू सती होने के लिए हुलस रही है। यह है राजस्थान का 'मरण महोत्सव ।'

और कदाचित् पति में कायरता के लक्षण दीखें तो—

> कत लखीजै दोहि कुल, न थी फिरती छाह ।
> मुडिया मिलसी गींदवो, बने न धण-री बाह ॥

पत्नी कहती है कि हे नाथ ! दोनो कुलो को (पितृ कुल, श्वसुर कुल) मर्यादाओं को देखो । शरीर रूपी चलती फिरती छाया का खयाल छोड दो । यदि आप युद्ध स्थल से लौट आये तो सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, पत्नी की भुजा नही मिलेगी । पत्नी ऐसे पति का स्पर्श भी नही करेगी ।

क्षात्र धर्म के विपरीत कई बार युद्ध से भाग आने के उदाहरण भी आ जाते थे—

> भागो कत लुकाय धण, ले खग आना धाड ।
> पहर धणीचा पूगरण, जीती खोल किवाड ॥

भागे हुए पति को पत्नी ने छिपा कर, पति के वस्त्र पहन कर, तलवार हाथ मे लेकर और किवाड़ खोलकर, आये हुए शत्रुओं की धाड़ पर विजयी पायी ।

और राजपूतों का एक 'कुटीरोद्योग' भी देखिये—

> या घर खेती ऊजली, रजपूता कुल राह ।
> वहणो धव धारा चिता, वहणो धारा वाह ॥

पति का तलवार चलाकर उसकी धारा में बह जाना और पत्नी का उसकी देह के साथ चिता पर चढ़ कर जल जाना यही राजपूतों की घर-खेती कुटीरोद्योग) और उज्ज्वल मार्ग है।

युद्ध रणोन्मत्त पतियों के चित्र भी देखिये—

> घर-घर बैर बसाविया, दिन-दिन सूंबै धाड़ ।
> हेलो मो धव टेवनो, न उडै धाम किवाड़ ॥

हे सखी ! मेरे प्रियतम ने घर-घर मे बैर बसा लिया है, प्रतिदिन आक्रमणकारियों की धाड़ आती है किन्तु पतिदेव इतने निडर है कि किवाड़

कम उम्र होते हुए भी ऐसे मामलों में वह खुद भी बड़ा होशियार था। केवल मिस्त्री के गुरु मंत्र को उसने गांठ बांध लिया और थोड़े ही समय में इस जगत के नियमों का पूर्ण जानकार बन गया।

मस्टरोल सचमुच उसके लिए सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी साबित हुआ। सारी बातें अलिखित मगर मजबूत नियमों में आबद्ध थीं। किसी को बांट बखरे के लिए एक शब्द भी बोलने की आवश्यकता नहीं थी। चन्द महिनों के पश्चात् ही उसे महसूस होने लगा कि उसे मकान तो नया बनवाना ही पड़ेगा। यह तो जानवरों के बाड़े से भी बदतर है। ताज्जुब है कि वह इतने दिन उसमें कैसे रहा?

......और अगले वर्ष अकाल फिर पड़ गया। अकाल क्या पड़ा लोगों पर मुसीबत का पहाड़ सा टूट पड़ा। गत वर्ष घरों में कुछ नाज जमा था, पशुओं के लिए कुछ भूसा था और तालाबों पोखरों में दो चार महिनों का पानी भी था। पर अब? अब तो कुछ भी नहीं था। लोग मुसीबत में फंस गये।

मगर उसकी तरक्की हुई। वह मेट से सुपरवाईजर बन गया।

देखते ही देखते भूख के मारे पशु बड़ी संख्या में मरने लगे। गावों के चारों ओर हड्डियों के ढेर जमा होने लगे। मारे सड़ान्ध के लोगों का चलना मुश्किल हो गया। गिद्धों और कुत्तों की बन आई। वे हड्डियों पर चिपके मांस के लोथड़ों को तोड़ते हुए रोज जश्न मनाने लगे। गाव-गाव पेड़ों पर गिद्धों के झुण्ड के झुण्ड दिखाई देने लगे। न मालूम इतने सारे गिद्ध कहां से आ गए थे? छोटे और बड़े तरह तरह के भयानक गिद्ध गर्दनें ऊंची किये, भारी भरकम डैने फैलाये, डरावने रूप से मुंह बाये, डगाक" डगाक...करते उछलते रहते, मुर्दा ढोरों को पैनी चोंच से चीर डालते और मांस का लोथड़ा टूटते ही कैंक! कैंक! करते हुए एक दूसरे पर झपट पड़ते। पर मांस का टुकड़ा मुंह में आते ही आंखें बन्द कर झट से गले के नीचे उतार लेते और पुनः अपने व्यापार में जुट जाते। छक जाने की स्थिति में बड़े बूढ़े तो आंखें मूंद कर गर्दनें भुकाए ऊंचे आसनों पर चुपचाप बैठे रहते पर नये खिलाड़ी इधर-उधर उछलते रहते।

भूख से तड़फ-तड़फ कर पशु तो मरे सो मरे ही मगर अब मनुष्यों का भी बुरा हाल था। कई घरों में केवल एक बार चूल्हा जलता था तो

कई घरों में चुपके-चुपके खेजड़ी की छाल आदि भी खाई जाने लगी थी। सब की आँखें अकाल राहत कार्यों की ओर लगी थीं।

आखिर सरकारी कागजात की खानापूरी सम्पूर्ण होने पर पुनः अकाल घोषित हुआ। राहत कार्य शुरू होने लगे और मनुष्यों के टोले के टोले-काम की तलाश में फेमिन कैम्पों पर आने लगे। चिथड़ों में लिपटे मानव कंकाल टिड्डी दल की तरह आ-आ कर कैम्पों के चारों ओर पड़ाव करने लगे।

कैम्पों पर चाँदी बरसने लगी।

× × ×

गाँव के पूर्व में तालाब के किनारे फेमिन कैम्प लगा हुआ था। एक बड़ी खेजड़ी के चारों ओर टीन खड़े करके दीवार भी बना दी गई थी। अन्दर की तरफ भी दो टीन शेड बने हुए थे। एक शेड में कैम्प स्टाफ का सामान और जरूरी कागजात पड़े रहते तो दूसरे में रसोड़े का प्रबन्ध था।

यह कैम्प साठ गाँवों के छत्तीस सौ मनुष्यों के लिए राज-दरबार बना हुआ था। दिन अस्त होते ही इस दरबार की रौनक शुरू हो जाती। पानी सप्लाई करने वाले अपने ऊँटों पर पखालें भर-भर कर लाते और कैम्प के आगे छिड़काव कर देते। पाँच दस जी-हजूरिये मजदूर, जिनकी ड्यूटी कैम्प स्टाफ की हाजिरी उठाना ही था, खाटों पर गादी तकिये जमा देते। वहीं एकाध मेज और चार छः कुर्सियें भी लग जातीं। ठंडे पानी के मटके बाहर धर दिये जाते और उनमें शराब की चार छः बोतलें ठंडी होने के लिए रख दी जातीं। सप्ताह में एकाध बार बकरा भी होता। रसोईदार रसोड़े का काम करते रहते और हाजरिये हाजरी में खड़े रहते।

इसके बाद धीरे-धीरे कैम्प स्टाफ इकट्ठा होने लगता। कैम्प मिस्त्री, कैम्प मुंशी, सुपरवाईजर और मेट सब आ आकर अपनी जगह पर जम जाते। महीने में दो तीन बार ओवरसियर और ए. ई. एन. भी आ जाते। गाँव में से भी कुछ निकम्मदाजों और नेताओं को बुला लिया जाता, फिर महफिल शुरू हो जाती भट्ट... भट्ट! बोतलों के काग खुलते इस ... इस करती रक्तिम वारुणी गिलासों में हिलोरें मारने लगती। शराब की महफिल के साथ साथ कभी-कभी पातरी भी सजती। ढोलनिये सतरंग के झीने घूंघटों में नीचे सुर में गाती—

दारू मीठो दाख रो, रण मीठी तलवार
सेजा मीठी कामणी, थे माणो नी राजकुमार
म्हारे आलीजो भरोगे बोसो दारू हो राज····

और महफिल के माझी सोमरस की चुस्कियो के साथ थापी का भी पूरा आनन्द उठाते।

आज भी महफिल अपने पूरे रग पर थी। पूर्णिमा का चाद काफी ऊंचा चढ़ आया था। उसकी धवल चादनी मे केम्प की यह नगरी फौज के पडाव के समान लग रही थी। चारो ओर जलते चूल्हे ऐसे लग रहे थे मानो केम्प के देवताओ की आरती के लिए थाल मे दीपक सजाए गए हो।

केम्प मिस्त्री ने अपनी मटके सी तोद पर प्यार से हाथ फर कर जोर से डकार लेते हुए कहा—

कहिए सुपरवाईजर जी आज यह महफिल किसकी ओर मे हो रही है ?

—हुकम, पालतू कुत्ते की तरह दुम हिलाता हुआ सुपरवाईजर बोला—आज की महफिल तो मेट फरसराम की तरफ से ··· ···

—अरे हुजूर दो दिन पहिले ही तो ओवरसियर साहब पधारे तब मेरे दो तीन सौ खर्च हुए हैं और फिर इस गरीब पर वार ?

—हा सुपरवाईजर साहब इस गरीब को तो बख्श दीजिए। इस विचारे के घर मे सिर्फ पाच सात सौ मन अनाज का स्टॉक होगा बाकी तो यह दाने-दाने का मुंहताज है। एक मेट बोला।

—गरीब के घर मे कुल मिला कर छोटे-मोटे बारह मनुष्य हैं, उन सब के फर्जी नाम फक्त तीन मस्टरोलो मे चलते हैं। इसके अलावा तो विचारे के एक पैसे की भी आमदनी नही है। दूसरा मेट बोला।

—मेरे तमाम घर वालो के नाम तो तीन मस्टरोलो मे फर्जी रूप से चलते हैं—यह बात तो जग जाहिर है, मगर जिनके घर मे तो बकरी भी नहीं है और वे पखाल के ऊंटो के नामो से बीसो रुपये रोज उठाते हैं, कागजो मे पानी के फर्जी छकड़े चलाते हैं और खारी जमीन मे मीठे पानी के कुए खुदवा कर भूठे एनाउम उठाते हैं, वे भी दूध के धोए नहीं हैं।

—देखो फरसराम इस प्रकार खान-पीना होने की जरूरत नहीं है।

खर्चा सबके होता है। आपने ओवरसियर साहब के आने पर खर्च किया तो क्या मैंने ए. ई एन साहब के आने पर तीन चार सौ की चपत नहीं खाई थी?

महफिल का मजा बिगड़ता देखकर मिस्त्री ने बीच में हस्तक्षेप किया और फरसराम ने बोतलें निचोर दीं। बोतलों के काक उड़ते ही सारा मनोमालिन्य भी काफूर हो गया। नये खिलाड़ी शीघ्र ही स्वयं को घोड़े पर सवार हवा से बातें करते महसूस करने लगे जब कि पुराने पापी गम्भीरता का लबादा ओढ़े गुमसुम से बैठे रहे। वैसे महफिल की समाप्ति तक तो प्रायः सबके होश-हवास गुम हो जाते थे मगर सबसे पहिले सुपरवाईजर और फरसराम की बारी आती थी।

सुपरवाईजर बोला—बोल बेटा फरसिया कैसाक मजा आया रे?

—उड़ने दो तापड़धिन्न प्यारे!—फरसराम बोला। तापड़धिन्न उसका तकिया कलाम था। जब भी वह घोड़े पर सवार होता तापड़धिन्न उसकी जबान पर सवार रहता।

—चार बोतल और मंगवा दूं बेटा?

—चार क्या आठ मंगवा दे स्साले हम कोई तेरी तरह मक्खीचूस थोड़े ही हैं।

—स्साला तू और तेरा बाप हरामजादे!

—तेरा बाप सूअर के बच्चे! आना आज डेरे की तरफ, स्साले की गर्दन नहीं मरोड़ दूं तो मेरा नाम फरसिया नहीं।

डेरे का नाम सुनते ही सुपरवाईजर एकदम आगबबूला हो गया। वह खाली बोतल लेकर झपटा। बात दर असल में यह थी कि इस केम्प में पूरी एक गैंग नटों की थी। उसमें कई नट और नटनियें काम करती थीं। उनका डेरा एकांत में था। केम्प का पूरा स्टाफ इस डेरे की कुछ जवान छोकरियों के पीछे दीवाना बना हुआ था। इसलिए उनके आपस में संघर्ष भी चलता था।

मिस्त्री को फिर हस्तक्षेप करना पड़ा, तब कहीं जाकर मामला शांत हुआ। धीरे-धीरे महफिल फिर जमने लगी और अपनी रंगत दिखाने लगी।

रसोइदारों ने मौका देखकर मांस-बाटियें परोस दिये।

एक मोटी-सी हड्डी चूसता हुआ मिस्त्री बोला—रसाला कलेक्टर का बच्चा।

आज मिस्त्री भी घोड़े पर सवार था।

.........रसाला हमको पकड़ने आया था। मेरा नाम मिस्त्री सुलेमान खा''' जात का पठान '' किसी से भी नही डरता'''तेरे बाप से भी नही। तेरे जैसे बीसो कलेक्टर अगुलियो पर नचा दिये बेटा''' पकड लिए ? पकड लिए बच्चू फर्जी नाम !' ......हू हू ह ह ह! ....इस महकमे मे तो हमारी ही चलेगी बेटा, तुम अपना काम देखो। क्यो रे सुपरवाईजर ?

—हुकम मिस्त्री जी !

—उडने दो तापडधिन्न प्यारे !

इस प्रकार महफिल अपनी पूरी रंगत पर थी कि अचानक मजदूरो के पडाव की तरफ से किसी औरत के चिल्लाने की आवाज आई। रात के सन्नाटे मे कोई बहुत ही करुण स्वर मे रो रही थी—

.........हाय मेरा बेटा ! ....इस दुखियारन को छोड कहा चला गया रे.........हाय रे !

दुख भरी चीत्कार हृदय को हिला देने वाली थी। इससे महफिल के रंग में भंग पड गया। चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड मजदूर उस पड़ाव की ओर जाने लगे।

—क्या बात है रे, कौन है यह हरामजादी ?

जा रे छोकरे देख के तो आ, क्या बात है ? छोकरा भागता हुआ गया और वापिस आकर बोला—हुजूर आठवीं गैंग मे एक मजदूर है—कालिया भील। परसों उसके [illegible] हुआ था, वह मर गया है, इसलिए भीलनी रो रही है और कोई खास बात नही है।

—मर कमबख्तो मेरी मौजमस्ती की ऐसी की तैसी। सब मजा किरकिरा कर दिया हरामजादी ने।

—चलो यार! महफिल का रंग उड़ा दिया साले ने।

—आखिर माँ है बिचारी क्यों गाली बकते हो जी।

—यह कौन होता है माँ का यार ? जा स्साले तू भी रो उसके साथ जाकर। मिट्टी को उड़ने दो नासपिटा!

मगर बावजूद कोशिश के उसकी महफिल फिर जम नहीं सकी और सब लोग लड़खड़ाते कदमों से रवाना हुए।

रात का मामला और विरति का समय सो दो चार मजदूर मिलकर बालिदे के बच्चे की लाश ले गये और एक झाड़ी के पीछे जमीन में गाड़ कर आ गए। भोमली बिचारी आधी रात तक तो विलाप करती रही मगर अन्त में थक कर पड़ रही।

सवेरा होने पर पड़ाव से उठकर कुछ मजदूर शौचादि से निवृत्त होने कुछ दूर गए तो उन्हें झाड़ियों की ओट में गिद्ध मंडराते दिखाई दिये। उन्होंने नजदीक जाकर देखा तो किसी नवजात शिशु की लाश को गिद्ध नोच रहे थे। यह शायद बालिदे भील के बच्चे की ही लाश थी जिसे सम्भवत रात में जंगली जानवरों ने जमीन में से खोद कर निकाल दिया था और कुछ खाकर शेष को छोड़ दिया था।

दो छोटे गिद्ध शिशु के कोमल लोथड़े को अपने पंजों में पकड़ कर तीक्ष्ण चोंचों से चीरने का उपक्रम कर ही रहे थे कि तीन बड़े गिद्ध आ पहुंचे और गेंक गेंक करते हुए उन पर झपट पड़े। इस वीभत्स दृश्य को देख कर देखने वालों के मन में बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। उन्होंने पत्थर फेंक-फेंक कर गिद्धों को उड़ाने का प्रयत्न किया। परन्तु वे पत्थरों की बौछार के बीच भी नरम-नरम मांस के लोथड़े मुंह में भर कर ऊंचे आसनों पर जाकर विराज गए।

हिमालय

• करणीदान बारहठ

इस कमरे में अपनी खाट लाने का कारण वह स्वय ही था। उस सारे माहौल से उसे विरक्ति-सी होने लगी थी, जी मिचलाने लगा था, एक प्रकार की घबराहट-सी बेचैनी-सी होती थी, तब वह यहां से भाग आया था। आदमी स्वतन्त्रता चाहता है, स्वतन्त्रता यानी खाने पीने की, सामने की, सोचने तक की स्वतन्त्रता एक मुक्त वायुमडल में। वहां यानी उनके कमरे में सब कुछ बौखलाहट-सा लगा था। बच्चो का शोर होता था, औरतों की बचकानी बातें होती थी, उठाव-पटक, रेडियो तक के घिसे पिटे गाने सभी से वह बोर हो गया था। वह स्वय भी तो उनके लिए एक 'बोरियत' थी। वह बार बार चाय पीने का आदी था, फिर सिगरेट पीने का, फिर सिगरेट का धूंआ फेंकने का और फिर सिगरेट की राख और टुकडे फेंकने का, उसके साथ खासने का और उसके बाद खासने का और फिर थूक फेकने का। उस समय उसकी पत्नी द्रौपदी बेहद बौखलाती थी। उसके बाल पकने लगे थे तभी से वह बौखलाने लगी थी। वह उससे नही ऊबा था, वह शायद उससे ऊब गई थी। वह धीरे धीरे अपने लडके और लडकियो में रुचि लेने लगी थी। उसका लडका समीर जब कपडे पहनकर बाहर निकलता, वह खडी होकर उसे देखती और मन ही मन बेहद खुश होती थी और वह खुशी उसके होठो पर उतरती, आखो पर मचलती और धीरे धीरे उसके रोम रोम में फैल जाती थी। हल्की हल्की-सी गुदगुदी उसके भीतर तक प्रवेश कर जाती। उसकी लडकी सरला जब बडी हुई तब उसने ऐसा महसूस नही किया था और न उसने भी। उसका बोझल शरीर सिर पर बोझ-सा लदा रहता था। वह बोझ भी तब उतरा, जब उसकी शादी हुई थी। उसके बाद ही गीता ने वही रग दिखाया और फिर

कान्ता ने। वे अब सब घर चली गई हैं, पराई हो गई हैं, इसलिए उसका घर सूना नजर नहीं आता, किन्तु ऐसा लगता है कि जैसे वह अपना उधार उतार आया।

समीर की शादी के बाद तो उसके घर में एक नई हलचल शुरू हुई, एक नई जिन्दगी का प्रवेश हुआ। तब वह अपने छोटे कमरे के कोने में चला गया था। उस जिन्दगी का उस पर विपरीत असर हुआ यानी कि उसके बाद तो उसने अपनी चाय स्वय बनानी शुरू कर दी थी और द्रौपदी उनमें इतनी घुल गई थी कि वह सारी रात अपने बिस्तर पर अकेला पडा खासता रहता था। प्रात उठकर जब सूर्य की किरणो के सामने वह उसे देखता, तब वह पहले दिन की अपेक्षा उसे अधिक सुन्दर लगती थी।

एक दिन वह अपने गणित के अध्यापक पद से भी रिटायर हो गया। रिटायर होने के बाद उसने पहले-पहल अपनी डायरी में अपने प्रश्न का हल लिखा। एक्स बराबर था पचास, फिर घन, फिर घन, फिर घन बराबर पाच सौ और अब एक्स बराबर शून्य। ऐसे प्रश्न उसने अनेकों बार अपने छात्रो के सामने समझाये थे। उस समय एक्स का मूल्य शून्य पर लाकर उसे हर्ष होता था, किन्तु आज उसका एक्स वास्तव में शून्य पर आया है और उसको एक गहरा धक्का लगा है, उसके ओठ सूखे हैं। तब उसने अपनी गीली जीभ से ओठो को गीला करने का प्रयास किया है।

उसके सामने दीवार पर भारत का नक्शा टगा है। ऊपर हिमालय की फैली हुई श्रेणिया है। उससे गगा, जमुना, सिन्ध, ब्रह्मपुत्र, कई नदिया निकलती नजर आ रही हैं। नदिया मैदान में फैली हुई हैं। उसके

चाय की तलब हुई और उसने अपने पास पड़े स्टोव पर पम्प चलाया। लाल लाल लपटें बाहर निकल आईं और उसने अपनी काली केतली उसके ऊपर रख दी। चाय पीते पीते उसे महसूस हुआ कि उसके पास एक कप बाकी बच रहेगा। उसने अपने दोनो कानों को बाहर फेंका। समीर और उसकी बहू भीतर कमरे मे किसी बात पर हंस रहे थे, रेडियो पूरे जोर से शोर कर रहा था। चूल्हे के काम मे द्रौपदी जुटी थी। उसने एक बार अपनी आंखों को भी भीतर जाने दिया। जाली मे से वह सब कुछ देख सकता था। तब समीर की बहू बिना घूंघट बाहर आ रही थी। उसने यह सुन्दर मुखड़ा कई बार पहले भी इन बूढ़ी आंखों से एकटक निहारा है, किन्तु आज उसे अपनी आंखें और बूढ़ी नजर आने लगी। इसके लिए उसने फिर अपनी आंखें अपने कप पर टिका ली और फिर पतीली की ओर घुमा दी। एक कप चाय बाकी बचेगी ही। उसका दिल उमड़ आया और उसने आवाज दी—'समीर की मा।'

समीर की मा कभी एक आवाज से तो नही आती थी, किन्तु आज आ गई। तब उसने अपनी ललचाई आंखों से उसके पिचके मुंह को देख लिया और फिर कहा—'एक कप चाय है, पी लो।'

वह अपनी परिचित खाट पर बैठ गई और उसकी ओर देखने लगी। उसने अपने जूठे कप मे चाय डाल दी और द्रौपदी गर्म गर्म चाय पीने लगी। 'बैठो तो' वह कहना चाहता था किन्तु वह कहने की स्थिति मे नही था और न द्रौपदी सुनने की स्थिति मे, क्योंकि बाहर समीर की बहू घूंघट निकाले घूम रही थी। उसकी झीनी चुन्नी मे से उसके खुले कान साफ दिख रहे थे।

द्रौपदी बाहर आ गई और वह फिर कमरे का एक कोना बन गया, अकेला कोना, पतली लकीर की तरह नीचे से ऊपर तक। चाय के समाप्त होने पर सिगरेट सुलगाना उसकी बरसो की आदत बन गई थी। इस सिगरेट के बाद जब उसे काम नही सूझा तब उसने अपना सही मूल्यांकन करना चाहा। इसके लिए उसने अपनी 'परसनल फाइल' निकाल ली। 'परसनल फाइल' देखते ही उसकी सारी सर्विस उसकी मुट्ठी मे आ गई। उसे एहसास हुआ कि उसके बाद जो कुछ था वह सब अतीत बन गया। वह बचपन के बाद जवानी के पुल पर चढ़ा था और अब उतर कर बुढ़ापे की समतल भूमि पर आ गया। उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रियां, पुत्र-वधू सब भी

उसके पीछे पुल के नीचे रेल के डिब्बो की भांति चलते फिरते नजर आ रहे हैं और वह इन सब मे अकेला आ पड़ा है।

उसने अपनी 'परसनल फाइल' का एक एक पन्ना उलटना शुरू किया तब उसकी तीस वर्ष की सर्विस बहुत बड़ी चादर की तरह फैल गई। उसके दिल मे मीठी गुदगुदी पैदा करने वाली स्मृतियां एक-एक कर हरी हो गई। उसमे उनका मीठा रस मिला। उसकी इच्छा हुई कि इस फाइल को रोजाना देखे ताकि उसे भविष्य मे जिन्दा रहने का प्रोटीन मिलता रहे। इस 'परसनल फाइल' मे कभी के छोड़े दो चित्र मिल गए। एक चित्र उसकी मां का है और दूसरा उसके पिता का। उसको याद आ गया कि उसने उनकी जिन्दगी भर उपेक्षा की। वे अब संसार मे नही हैं। मां जब बीमार हुई थी उस समय वह अपनी पत्नी के साथ था और वे दोनों अपनी मां को सम्भालने को भी तैयार नही हुए थे। जब उसकी मृत्यु का तार आया था, उस रात वह रात्रि भर अपनी पत्नी के साथ सोया था। पिता की तो मृत्यु के बाद ही उसे समाचार मिला था। उसने इसके बाद फिर भारत के नक्शे पर दृष्टि डाली। हिमालय से नदियां निकली हैं। वे अपने धान और धरती का लालन-पालन करती हैं। वे फिर कभी हिमालय को नही सम्भालती। यह विचार उसके मस्तक को कौंधता रहा और वह अपने पीछे टंगी अपनी पत्नी के अपने साथ खिंचे चित्र को देखता रहा। उसने फिर समीर को आवाज दी—'बेटा समीर, तू आज अपने दादा, दादी के चित्रों को एन्लार्ज करवा लेना।' और उसने फिर वे दोनों फोटो उसे दे दिए।

फिर उसकी इच्छा हुई कि वे दोनों चित्र उसके सामने टंगने चाहिए और उसने फिर समीर को कहा—'बेटा समीर, तू इन्हे फ्रेम में जड़वा भी लेना।'

'अच्छा पिताजी।' समीर वापस चला गया।

दूसरे दिन उसकी एक दाढ़ मे दर्द शुरू हो गया। दिन मे यह दर्द अधिक बढ़ गया। दिन मे उस दर्द के साथ सबकी सहानुभूति जुड़ी हुई थी। तब उसे महसूस हुआ था कि यह दर्द उसका अपना नही, सभी का दर्द था। फिर रात प्रारम्भ हुई थी। सब उसे तंग करने के लिए सोता

चाय की तलब हुई और उसने अपने पास पड़े स्टोव पर पा
लाल लाल लपटें बाहर निकल आईं और उसने अपनी काली
ऊपर रख दी। चाय पीते पीते उसे महसूस हुआ कि उसके
बाकी बच रहेगा। उसने अपने दोनों कानों को बाहर फेंका।
उसकी बहू भीतर कमरे में किसी बात पर हंस रहे थे, रेडियो
शोर कर रहा था। चूल्हे के काम में द्रौपदी जुटी थी। उ
अपनी आंखों को भी भीतर जाने दिया। जाली में से
देख सकता था। तब समीर की बहू बिना घूंघट बाहर आ
उसने यह सुन्दर मुखड़ा कई बार पहले भी इन बूढ़ी आंखों
निहारा है, किन्तु आज उसे अपनी आंखें और बूढ़ी नजर
इसके लिए उसने फिर अपनी आंखें अपने कप पर टिका लें
पतीली की ओर घुमा दी। एक कप चाय बाकी बचेगी ही।
उमड़ आया और उसने आवाज दी—'समीर की मां।'

समीर की मां कभी एक आवाज से तो नहीं आती
आज आ गई। तब उसने अपनी ललचाई आंखों से उसके चि
देख लिया और फिर कहा—'एक कप चाय है, पी लो।'

वह अपनी परिचित खाट पर बैठ गई और उसकी
लगी। उसने अपने जूठे कप में चाय डाल दी और द्रौपदी गर्म
पीने लगी। 'बैठो तो' वह कहना चाहता था किन्तु वह कहने की
नहीं था और न द्रौपदी सुनने की स्थिति में, क्योंकि बाहर समी
घूंघट निकाले घूम रही थी। उसकी झीनी चुन्नी में से उसके
साफ दिख रहे थे।

था। सामने के नक्शे का हिमालय पहाड़ दूर दूर तक बर्फ से ढका नजर आता। वह कमरे की स्थिति में आ गया।

उसने कहा—'समीर बेटा!'

'हां जी! क्यों कुछ दर्द कम हुआ?'

'कुछ ठीक हो रहा हूं।'

'कुछ कह रहे थे आप?'

'हां, यह कह रहा था कि हिमालय पहाड़ पर बर्फ कहां से आती है?'

'आप ज्यादा बोला न करें।'

'ठीक तो कह रहा हूं।'

'क्या ठीक कह रहे हैं?'

'कह रहा हूं कि हिमालय नदियों को पानी देता है, नदियां धरती को सींचती हैं।'

'यह तो आप कब से कह रहे हैं, हमें आपकी बात समझ में नहीं आती।'

'अरे, ये नदियां ही तो फिर हिमालय को पानी भेजती हैं और उसका दिल, दिमाग शीतल रहता है।'

'होगा, अब दर्द ठीक है क्या?'

'हां, अब ठीक है।' उसे समीर के हाथों के दबाव से हृदय तक शीतलता रेंगकर आ पहुंची है। कितना गहरा तारतम्य है! हृदय से हाथ, हाथ से पैर और फिर पैरों के माध्यम से हृदय तक। उसे महसूस होने लगा है कि कल तक उसका हिमालय जो नंगा, मायूस और वीरान नजर आ रहा था आज वह बर्फीली शान्त परतों से ढका जा रहा है। उसने सबसे कह दिया है—'बस, बस, अब मैं ठीक हूं।'

•

रात आगे बढ़ी, दर्द आगे बढ़ा। रात ढलती गई, दर्द बढ़ता गया। उस समय सबके सोने का स्वर उसके नथुनों में से स्पष्ट सुनाई दे रहा था। तब उसे एहसास हुआ कि वह अपने दर्द को अकेला ढो रहा है और ढोता रहेगा। आदमी इस भारी भीड़ में भी सचमुच अकेला है और अकेला ही रहेगा। उसने फिर 'मैं' की दार्शनिक परिभाषा देनी शुरू कर दी। सबसे अलग-थलग एक जीव जो अपने पाप, पुण्य को स्वयं ढोता है, न उसका कोई साझी है, न कोई साथी। फिर उसे 'मां' याद आ गई। उसके बचपन में उसकी एक बार आंखें आई थीं, तब उसकी 'मां' की भी दाढ़ दर्द करने लगी थी, तब वह तड़के ही अपनी पत्नी से सटकर सो गया था। फिर उसने अपनी मां और पत्नी को पहले मिलाकर और फिर अलग-अलग देखना प्रारम्भ किया। उसे मां का रूप गीता के भगवान् के विराट् रूप-सा दिखाई दिया। अब उसने 'मां' के साथ-साथ भगवान् का नाम लेना शुरू कर दिया था।

अंधेरा अपना विराट् रूप छोड़ने चला था, उस समय उसकी पत्नी उसके दर्द के साथ सहानुभूति प्रकट करने आ गई थी। उस अंधेरे में उसका चेहरा दिखाई नहीं दे रहा था, फिर भी वह प्यारी लगने लगी थी और रात भर की उसकी बटोरी हुई प्रतिक्रियाएं अन्धेरे की तरह ही विलीन होने लगी थी। उसका 'मैं' जो रात को सिकुड़ कर ठोस बन गया था अब वह पिघलने लग गया था और फिर तरल बनकर अपनी सहधर्मिणी के ऐन निकट जा पहुंचा था।

द्रौपदी ने समीर की बहू को आवाज दी, 'बहू, थोड़ा नमक गरम कर।'

वह उससे कह रही थी—'आप इसे निकलवा क्यों नहीं देते ?'

'आज जाऊंगा, रात भर नींद नहीं ले सका।'

द्रौपदी का हाथ रजाई में गरम लग रहा था।

कुछ देर बाद ही समीर की बहू गरम नमक की पोटली ले आई थी। समीर भी वहां जाकर खड़ा हो गया। वह अपने पिताजी के पैर दबाने लगा था।

उसकी नजर फिर भारत के नक्शे पर पड़ी। गरम नमक की पोटली उसके दर्द को कम कर रही थी। वह आराम महसूस करने लगा

था। भारत के नक्शे का हिमालय अब दूर-दूर तक बर्फ से ढका नजर आया। वह कहने की स्थिति में आ गया।

उसने कहा—'समीर की मां !'

'हां जी, क्यों, कुछ दर्द कम हुआ ?'

'कुछ ठीक हो रहा हूं।'

'कुछ कह रहे थे आप ?'

'हां, यह कह रहा था कि हिमालय पहाड़ पर बर्फ कहां से आती है ?'

'आप ज्यादा बोला न करें।'

'ठीक तो कह रहा हूं।'

'क्या ठीक कह रहे हैं ?'

'कह रहा हूं कि हिमालय नदियों को पानी देता है, नदियां धरती को सींचती हैं।'

'यह तो आप कल से बहक रहे हैं, हमें आपकी बात समझ में नहीं आती।'

'अरी, ये नदियां ही तो फिर हिमालय को पानी भेजती हैं और उसका दिल, दिमाग शीतल रहता है।'

'होगा, अब दर्द ठीक है क्या ?'

'हां, अब ठीक है।' उसे समीर के हाथों के दबाव से हृदय तक शीतलता रेंगकर आ पहुंची है। कितना गहरा तारतम्य है ! हृदय से हाथ, हाथ से पैर और फिर पैरों के माध्यम से हृदय तक। उसे महसूस होने लगा है कि कल तक उसका हिमालय जो नंगा, मायूस और वीरान नजर आ रहा था आज वह बर्फीली शान्त परतों से ढका जा रहा है। उसने सबसे कह दिया है—'बस, बस, अब मैं ठीक हूं।'

रात भागे बढ़ी, दर्द आगे बढ़ा। रात ढलती गई, दर्द बढ़ता गया। उस समय सबके सोने का स्वर उनके नथुनों में से स्पष्ट सुनाई दे रहा था। तब उसे एहसास हुआ कि वह अपने दर्द को अकेला ढो रहा है और ढोता रहेगा। आदमी इस भारी भीड़ में भी सचमुच अकेला है और अकेला ही रहेगा। उसने फिर 'मैं' की दार्शनिक परिभाषा देनी शुरू कर दी। सबसे अलग-अलग एक जीव जो अपने पाप, पुण्य को स्वयं ढोता है, न उसका कोई साझी है, न कोई साथी। फिर उसे 'मां' याद आ गई। उसके बचपन में उसकी एक बार आंखें आई थीं, तब उसकी 'मां' की भी दाढ़ दर्द करने लगी थी, तब वह लड़के ही अपनी पत्नी से सटकर सो गया था। फिर उसने अपनी मां और पत्नी को पहले मिलाकर और फिर अलग-अलग देखना प्रारम्भ किया। उसे मां का रूप गीता के भगवान् के विराट् रूप-सा दिखाई दिया। अब उसने 'मां' के साथ-साथ भगवान् का नाम लेना शुरू कर दिया था।

अंधेरा अपना विराट् रूप छोड़ने चला था, उस समय उसकी पत्नी उसके दर्द के साथ सहानुभूति प्रकट करने आ गई थी। उस अंधेरे में उसका चेहरा दिखाई नहीं दे रहा था, फिर भी वह प्यारी लगने लगी थी और रात भर की उसकी बटोरी हुई प्रतिक्रियाएं अन्धेरे की तरह ही विलीन होने लगी थीं। उसका 'मैं' जो रात को सिकुड़ कर ठोस बन गया था अब वह पिघलने लग गया था और फिर तरल बनकर अपनी सहधर्मिणी के ऐन निकट जा पहुंचा था।

द्रौपदी ने समीर की बहू को आवाज दी, 'बहू, थोड़ा नमक गरम कर।'

वह उससे कह रही थी—'आप इसे निकलवा क्यों नहीं

'आज जाऊंगा, रात भर नींद नहीं ले सका।'

द्रौपदी का हाथ रजाई में गरम लग रहा था।

कुछ देर बाद ही समीर की बहू गरम नमक

थी। समीर भी वहां जाकर खड़ा हो

दबाने लगा था।

उसकी नजर फिर

पोटली उसके दर्द को कम क

इस के बाद वे उस वार्निश के पुरानी पड़कर स्थान-स्थान से गिर जाने की प्रतीक्षा करने लगे क्योंकि रवीन्द्रनाथ ने जिस पालकी की चर्चा की है उसका वार्निश जगह जगह से इसलिये उड़ चुका था कि वह बहुत पुरानी थी। कुछ दिन धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने पर भी पालकी का वार्निश नहीं गिरा। पर भट्टाचार्य बाबू आशावादिता के जीते जागते अवतार ठहरे। निराश क्यों होते ? यद्यपि बुद्धि उनमें विशेष नहीं है पर पता नहीं कभी-कभी वे न जाने कहां से इतनी बटोर लाते हैं कि पचा नहीं पाते। जिस तरह चूल्हे से निकला धुआं रसोईघर की छत और दीवारों को काला कर देता है, उसी प्रकार ऐसे समय भट्टाचार्य बाबू की बुद्धि का वमन कोई विशेष चमत्कार प्रदर्शित कर उनके संपूर्ण परिवार अथवा उसके किसी सदस्य को संकटग्रस्त कर देता है। बेचारा शशिकांत ऐसे ही चक्कर में फंसने वाला था।

जो कुछ सामग्री उन्हें मिल सकती थी उसे जुटा कर वे योजनानुकूल कार्य करने में लग गये। प्रारंभ में ही एक बाधा उपस्थित हुई। देवेन्द्रनाथ बालक रवीन्द्रनाथ को लिये हुए शांति की खोज में वर्षों इधर-उधर भटके थे। वे उस समय हिमालय के दुर्गम स्थलों तक हो आये थे। भट्टाचार्य बाबू के पास कहां इतना पैसा रखा था कि वे शशिकांत को लिये निठल्ले की तरह घूमते फिरते। रवीन्द्रनाथ को उनके पिता ने यूरोप भेजा था, भट्टाचार्य बाबू यह भी न कर सकते थे। बाद में रवि बाबू को जमीन की देखभाल करनी पड़ी थी। भट्टाचार्य बाबू की सात पीढ़ियां भी किसी प्रकार की जमीन या जायदाद किस्मत में लिखा कर नहीं लाई थीं। "खैर" उन्होंने सोचा, शशिकांत के उस अवस्था में पहुंचने तक शायद कुछ हो जाय। पुरुष का भाग्य कब क्या करवट लेगा इसे तो देवता भी नहीं जानते। किन्तु पालकी की समस्या फिर सामने आगई। भट्टाचार्य बाबू कब तक प्रतीक्षा करते ? समय के प्रभाव से उसका वार्निश गिरने में कई वर्ष चाहिये थे। तब शायद शशिकांत के पौत्र या प्रपौत्र ही रवीन्द्रनाथ बन पाता और भट्टाचार्य बाबू को इस लोक से अपूर्ण अभिलाषा लिये प्रस्थान करना पड़ता जो उन्हें भूत भी बना सकती थी। निदान, वे एक चाकू लेकर पुरानी किन्तु कुछ ही दिन पूर्व खरीदी पालकी के नये वार्निश को खुरचने में पिल गये। रवि बाबू की पीढ़ियों से प्राप्त पालकी की स्थिति में भट्टाचार्य बाबू ने अपनी पालकी को दो दिन में पहुंचा दिया। अब वे चाहते थे कि शशिकांत नित्य पालकी में जा बैठा करे और उसी भांति

हिमालय

• करणीदान बारहठ

इस कमरे में अपनी खाट लाने का कारण वह स्वयं ही था। उस
माहौल से उसे विरक्ति-सी होने लगी थी, जी मिचलाने लगा था, एक
की घबराहट-सी बेचैनी-सी होती थी, तब वह यहां से भाग आया
आदमी स्वतन्त्रता चाहता है, स्वतन्त्रता यानी खाने पीने की, सामने
सोचने तक की स्वतन्त्रता एक मुक्त वायुमण्डल में। वहां यानी उनके
में सब कुछ चौगलाहट-सा लगता था। बच्चों का शोर होता था,
ों की बकवासी बातें होती थी, उठाव-पटक, रेडियो तक के घिसे पिटे
सभी से वह बोर हो गया था। वह स्वयं भी तो उनके लिए एक
सल' थी। वह बार बार चाय पीने का आदी था, फिर सिगरेट पीने
फिर सिगरेट का धूआ फेंकने का और फिर सिगरेट की राख और
फेंकने का, उसके साथ खांसने का और उसके बाद खांसने का और
थूक फेंकने का। उस समय उसकी पत्नी द्रौपदी बेहद बौखलाती थी।
बाल पकने लगे थे तभी से वह बौखलाने लगी थी। वह उससे नहीं
था, वह शायद उससे ऊब गई थी। वह धीरे धीरे अपने लडके और
यो मे रुचि लेने लगी थी। उसका लडका समीर जब कपडे पहनकर
निकलता, वह खड़ी होकर उसे देखती और मन ही मन बेहद खुश
थी और वह खुशी उसके होठो पर उतरती, आखो पर मचलती और
धीरे उसके रोम रोम मे फैल जाती थी। हल्की हल्की-सी गुदगुदी
भीतर तक प्रवेश कर जाती। उसकी लडकी सरला जब बडी हुई
उसने ऐसा महसूस नही किया ।‹ न उसने भी। उसका बोझल
सिर पर ˆ ˜˜ . ˜ तब उतरा, जब
ी शा˜ी

था। भारत के नक्शे का हिमालय अब दूर-दूर तक बर्फ से ढका नजर आया। वह कहने की स्थिति में आ गया।

उसने कहा—'समीर की मा!'

'हा जी, क्यो, कुछ दर्द कम हुआ?'

'कुछ ठीक हो रहा हूं।'

'कुछ कह रहे थे आप?'

'हा, यह कह रहा था कि हिमालय पहाड पर बर्फ कहा से आती है?'

'आप ज्यादा बोला न करें।'

'ठीक तो कह रहा हूं।'

'क्या ठीक कह रहे है?'

'कह रहा हूं कि हिमालय नदियो को पानी देता है, नदिया धरती को सींचती हैं।'

'यह तो आप कल से बहक रहे है, हमे आपकी बात समझ मे नही आती।'

'अरी, ये नदिया ही तो फिर हिमालय को पानी भेजती हैं और उसका दिल, दिमाग शीतल रहता है।'

'होगा, अब दर्द ठीक है क्या?'

'हा, अब ठीक है।' उसे समीर के हाथो के दबाव से हृदय तक शीतलता रेंगकर आ पहुंची है। कितना गहरा तारतम्य है! हृदय से हाथ, हाथ से पैर और फिर पैरो के माध्यम से हृदय तक। उसे महसूस होने लगा है कि कल तक उसका हिमालय जो नगा, मायूस और वीरान नजर आ रहा था आज वह बर्फीली शाल्म परतो से ढका जा रहा है। उसने सबसे कह दिया है—'बस, बस, अब मैं ठीक हूं।'

वृद्धि दोष

• श्रीनन्दन चतुर्वेदी

भट्टाचार्य बाबू के कार्यों का विवेचन करने के बाद उनके चमकते हुए मस्तक को देख कर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो बालों का आवरण न होने से उनकी बुद्धि मस्तिष्क को छोड़ कर उड़ गई है या वह खुली हवा और प्रकाश पाकर इतनी अधिक बढ़ गई है कि उन्हें कभी-कभी बुद्धि का अपच हो जाता है। जब रवि बाबू के नाम और चित्रों से उनने समाचारपत्रों के पृष्ठ रंगे देखे तो उन्हें भी अपने सुपुत्र शशिकांत भट्टाचार्य को रवीन्द्रनाथ बनाने की इच्छा बलवती हुई। वे उसे रवीन्द्रनाथ बनाने पर तुल गये। शशिकांत को उनने वही परिस्थिति और वातावरण देना चाहा जो रवि बाबू को बचपन मे मिला था। वे स्वयं तो देवेन्द्रनाथ बन न सकते थे, देवेन्द्रनाथ की समाधि वे कहां से पाते? समाधि यदि किसी संत की संगति से मिल भी जाती तो महर्षि के जितनी संपत्ति कहां से प्राप्त करते? खैर, जितना कुछ संभव था, उन्होंने किया।

रवीन्द्रनाथ की जीवनी को भट्टाचार्य बाबू ने आद्योपांत पढ़ा। क्या-क्या विशेषतायें रवि बाबू मे थीं और कौन-कौन सी विशेष आदतें उनकी बचपन में रहीं, इस पर उन्होंने पैनी दृष्टि रखी।

रवि बाबू के यहां अनेकों नौकर थे, भट्टाचार्य बाबू ने भी अपने यहां अनेकों नौकर रख लिये। नौकरों को पुरानी वेश-भूषा भी दी गई। नौकर भी उन्हीं नामों के खोजे गये। जो नहीं मिल पाये उनके स्थानापन्न नौकरों को वे ही नाम रखने पड़े जो देवेन्द्रनाथ ठाकुर के नौकरों के थे। रवीन्द्रनाथ के संस्मरणों मे एक पुरानी पालकी की भी चर्चा मिली जिसमे बैठकर बचपन मे वे विविध यात्राओं के दिवास्वप्न देखा करते थे। भट्टाचार्य बाबू ने पालकी का प्रबंध किया। फिर उस पर वार्निश किया गया।

सोचा करे जिस भांति बालक रवीन्द्रनाथ सोचते थे।

पालकी तैयार थी पर दुःख यह था कि शशिकांत उसमे बैठता ही न था। जब शशिकांत स्वेच्छा से उसमें न बैठा तो उसे आदेश दिया गया कि वह खाली समय में जाकर पालकी में बैठा करे। फिर भी वह न बैठा तो उसे पीटा गया। अब बचाव का कोई साधन न रहा। बेचारा दिन भर पालकी मे बैठा सिसकता रहता। दोपहर के समय नींद आने पर उसी मे सो जाता और जब कभी देखता कि भट्टाचार्य बाबू किसी कार्य से बाहर गये हैं तो वह पालकी से निकल कर घर से बाहर भाग खड़ा होता।

भट्टाचार्य बाबू को पूरा विश्वास था कि पालकी का कुछ प्रभाव शशिकात के मन पर अवश्य पड़ेगा। अत. एक माह तक उसे लगातार पालकी मे बिठाने के बाद उनने उसकी परीक्षा ली। उन्होने शशिकात से प्रश्न किया—"तुम पालकी में बैठ कर क्या सोचते हो ?" शशिकात चुप रहा। "बोलो क्या करते हो ?" उन्होने फिर पूछा। शशिकात फिर भी न बोला। "अबे मर गया है क्या ? बोलता क्यों नही ?" भट्टाचार्य बाबू क्रोधित होकर बोले।

"मैं तो उसमे खाली बैठा रहता हू और जब नींद आती है, सो जाता हूं।" वह डरते डरते बोला।

"जब तू उसमे खाली बैठा रहता है तब क्या सोचता है ?" शशिकांत फिर चुप। "मैं······वह थोड़ी देर बाद बोला और स्मृति को टटोलते हुए उसने कहा, "मैं तो कुछ भी नही सोचता, खाली ही बैठा रहता हूं।"

"झूठा कहीं का !" भट्टाचार्य बाबू ने तिनक कर कहा, "ऐसा हो ही नही सकता कि कोई खाली ही बैठा रहे और कुछ भी न सोचे। ठीक बता, नहीं तो चमड़ी उधेड़ दूंगा।" और इसके साथ उनकी छड़ी हवा में घूम गई।

"मैं···तो···मैं···मैं···याद नहीं···क्या सोचता हूं !" शशिकांत आंसू पोंछता हुआ बोला।

"खैर, आगे से याद रखना" भट्टाचार्य बाबू ने कहा और सोचा अभी कुछ प्रतीक्षा और करनी होगी, तब तक पालकी कुछ असर दिखायेगी ही।

एक दिन भट्टाचार्य बाबू शशिकात को पालकी मे बिठा कर किसी कार्य से बाहर चले गये। तनिक देर बाद वापस लौटे तो पालकी देख कर

ठिठक गये। शरीर में बिजली सी दौड़ गई। "अब समझ में आया कि बात क्या है ?" वे बोल उठे। शशिकांत की खोज-खबर की गई पर सब व्यर्थ! तीन घंटे बाद वह लौट कर आया। उसकी अच्छी पूजा हुई। आगे से वह पालकी छोड़कर भागने की तनिक हिम्मत न कर सका।

भट्टाचार्य बाबू प्रसन्न थे कि शशिकांत पर उनकी बात का असर हो गया। अब योजना का दूसरा चरण आरंभ हुआ। एक नौकर को आदेश दिया कि वह शशिकांत को बगीचे में ले जाया करे। उसे वहां बिठा-कर उसके चारों ओर खड़िया से एक चौका खींच दिया करे, फिर डांट कर कहे कि 'वह चौके से उठा और उसकी शामत आई।" शशिकांत को सम-झाया गया कि वह चौके में तब तक बैठा रहे जब तक उठने को न कहा जाय! एक दिन भट्टाचार्य बाबू तलाश करने के लिये बगीचे में गये तो पाया कि नौकर काम में लगा था और चौका खाली पड़ा था। वे आग-बबूला हो गये। शशिकांत दूर खेल रहा था। उसे बुलाकर पीटा गया। बेचारे ने अब चौके से भागना बंद कर दिया। अब भट्टाचार्य बाबू को लगा कि सचमुच शशिकांत कुछ रवीन्द्रनाथ बनने लगा था।

योजना के कई चरण थे। शशिकांत के बड़े भाई को पाठशाला में प्रविष्ट किया गया और उसे घर पर पढ़ाने को भी अध्यापक रखा गया। अब भट्टाचार्य बाबू की यह अभिलाषा थी कि शशिकांत रवि बाबू की तरह पाठशाला जाने को हठ करे और फिर अध्यापक उसके थप्पड़ मार उसे सम-झाये, "अभी वह पाठशाला जाने के लिये जितना रो रहा है, उससे अधिक फिर पाठशाला न जाने के लिये रोयेगा।" कई दिन बीत गये। शशिकांत ने पाठशाला जाने का दुराग्रह तो दूर, साधारण इच्छा भी व्यक्त न की। भट्टाचार्य बाबू दुःखी हुए। निदान, उन ने स्वयं उद्यम किया। शशिकांत तैयार न हुआ तो उसे चपत लगा कर तैयार किया गया। वह चपत खाकर रोता हुआ अध्यापक जी के पास पहुँचा और हठ करने लगा कि उसे भी पाठशाला भेजा जाय। अध्यापकजी पूर्व निर्देशानुसार उसके थप्पड़ जमा कर बोले, "अभी पाठशाला जाने को रो रहा है, फिर इससे कहीं अधिक नहीं जाने के लिये रोयेगा!" घटना के अभिनय से भट्टाचार्य बाबू प्रसन्न हुए। शशिकांत को अकारण दो थप्पड़ खाने पड़े। वह दुःखी था।

शशिकांत कुछ बड़ा हुआ। उसे पाठशाला में पढ़ने के लिये भेजा गया। भट्टाचार्य बाबू स्वयं जाकर अध्यापक जी से मिले और शशिकांत को रवीन्द्रनाथ बनाने की योजना समझा कर बोले, "आप शशिकांत पर तनिक दया न करें। उसे कुछ नहीं आवे तो खड़ा कर दें और दोनों हाथ

ज्यादा करता कर उन पर साथी की स्लेट इकट्ठी कर जाती ज्यों रख दें, इसके बाद उसे बेंत से मारें।' इधर शशिकांत को सिखाया गया कि वह पढ़ाई में नियमित नहीं था। शशिकांत पर यह प्रभाव पड़ने लगा किन्तु पाठशाला पहुंचते ही उसकी चाल बदल जाती। एक दिन जब वह रवीन्द्रनाथ बन रहा था, उसके हाथों पर से स्लेट गिर पड़ी और टूट गई। स्लेट जिन साथियों की थी वे सब रोने लगे। कक्षा में शोर मच गया। छुट्टी हुई तो पाठशाला का चपरासी शशिकांत के साथ आया। उसने स्लेट टूटने की सूचना दी। सभी स्लेटों के पैसे भट्टाचार्य बाबू को चुकाने पड़े। अब उन्होंने दुःखी होकर स्वयं पांच स्लेटें खरीदीं। शशिकांत अब पाठशाला जाता तो उसे निज पुस्तकों के अतिरिक्त एक और थैला स्लेटों से भरा हुआ साथ ले जाना पड़ता। पाठशाला में उसे स्लेटें हाथ पर उठा कर रवीन्द्रनाथ बनना पड़ता और लौटते समय फिर वैसे ही हम्माली करनी पड़ती। शशिकांत ने अपने के लिये घर वालों से आंखें चुराकर चुपचाप पाठ याद करना शुरू कर दिया। अब पाठशाला में वह रवीन्द्रनाथ कैसे बनता? अध्यापकजी ने घर पर शिकायत की तो भट्टाचार्य बाबू गंभीर हो गये। उन्हें लगा जैसे संपूर्ण परिश्रम व्यर्थ जा रहा है और सुनहरे भविष्य की अट्टालिका भरभरा कर गिर जाना चाहती है। शशिकांत का कान पकड़ कर उन्होंने दो थप्पड़ जमाये और कहा, "तेरे हाथों में कभी पढ़ाई की सामग्री देखी तो तुझे उठाकर फेंक दूंगा।" अध्यापकजी को वे एकांत में ले जाकर बोले, "इस लड़के को घर पर पढ़ने को और पाठ दीजिये और कक्षा में इससे किसी दूसरे पाठ को पूछिये। देखें कैसे ठीक जवाब दे पाता है?" इस घिराव के बाद शशिकांत के पास पाठशाला में रवीन्द्रनाथ बनने के अतिरिक्त कोई चारा न रह गया। उसका मन पढ़ाई से हटने लगा और कुछ महीनों में उसे पढ़ाई लिखाई से एकदम अरुचि हो गई।

इस सफलता ने भट्टाचार्य बाबू का हौसला बढ़ा दिया। अगला कार्य प्रारंभ हुआ। शशिकांत को वे लोहे के तारों वाली एक खिड़की के पास ले गये और बोले, "तू यहां डंडा लेकर खड़ा हो जाया कर। जैसे अध्यापक बेंत मार कर छात्रों को पढ़ाता है, वैसे ही तू डण्डे से मार-मार कर लोहे की इन छड़ों को पढ़ाया कर। रवीन्द्रनाथ बच्चे थे तब ऐसा ही करते थे।" शशिकांत को इस खेल में बड़ा आनंद आया। वह नित्य इस खेल को खेलने लगा। एक दिन जब भट्टाचार्य बाबू घर से बाहर थे, शशिकांत ने अपने छात्र अर्थात खिड़की में लगे लोहे के सरिये को डण्डे से ठोक कर पढ़ाते हुए कहा, "बोल बारह तियें चार!"

नियें कितने ?" लोटा क्या बोलता ? "मच्छा" शशिकांत बोला, 'यों नहीं बोलेगा।" और भट्टाचार्य बाबू की उस कीमती छडी को उठा लाया जिसे वे विशेष समारोह या अवसर पर ही ले जाया करते थे। प्रत्येक सरिये को उसने छड़ी से मारना शुरू किया। तीन-चार प्रहारों के बाद ही छडी टूट गई। शशिकांत विचलित न हुआ। "यों काम न चलेगा", वह गरजा, "इन छात्रों को तो दूसरा दण्ड भी देना पडेगा।" वह दौड़ा और अपनी स्लेटों का गट्ठर उठा लाया किन्तु लोहे की छडो के न हाथ थे, न स्लेटो का गट्ठर रखने की ही कोई जगह। उसने दिमाग दौड़ाया और शीघ्र ही एक हथौड़ा घर मे से उठा लाया। वह ठोक-ठोक कर लोहे की छडो को चौखट से निकाल लेना चाहता था। आखिर चौखट टूट गई और शलाकें भी टेढ़ी-तिरछी होकर निकल आईं। खिड़की के ऊपर का पत्थर चटख गया, आधार भी टूट गया। शशिकांत निश्चिन्त था। अपने अपराधी छात्रों को वह पा गया था। उसने समस्त छड़ें निकाल कर धरती मे थोड़ी थोड़ी दूरी पर गाड दीं। स्लेटों का गट्ठर उठाकर वह एक छड पर टिकाने का उपक्रम करने लगा। कुछ प्रयास के बाद आखिर वह अकेली छड पर किसी तरह वजन साधकर स्लेटें टिकाने मे सफल हो गया। अपनी इस सफलता पर वह उछल पडा। भट्टाचार्य बाबू की वह दूसरी छडी ले आया। अपने शिष्य को अपशब्द कहते हुए उसने एक सडाका जोर से उडाया। सडाके के साथ ही स्लेटों का गट्ठर और शिष्य दोनों धरती सूंघने लगे। कुछ स्लेटें फूट गई। शशिकांत का क्रोध भमक उठा। "मच्छा, स्लेटें भी तोड डालीं! पहाडा भी नहीं बोला।...बोल बारह तिये चार...!" और वह छडी उठा कर बुरी तरह अपने शिष्य पर पिल गया। यह छडी भी टूट गई। उसका क्रोध अब मनोरंजन मे बदल गया। उसने एक सरिया उठाकर उससे अन्य सब सरियों को पीटना शुरू किया। सरियों के साथ ही स्लेटें भी पीटी गईं। एक-एक स्लेट जब तक चूर-चूर न हो गई वह नहीं रुका।

सध्या समय भट्टाचार्य बाबू घर लौटे तो उन्होंने स्लेटों का चूरा बिखरा पाया। खिड़की की टूटी चौखट एक ओर पड़ी थी और सरिये इधर उधर बिखरे थे। छड़ियों के टुकडे साष्टाग प्रणाम की मुद्रा मे लेटे थे। तब तक देखा कि खिड़की के ऊपर व नीचे के पत्थर टूट जाने से दीवार गिरने का भय उत्पन्न हो गया था। क्रोधित तो हुए पर पहले दीवार बचाने का प्रबंध आवश्यक हो गया था अत तत्काल कारीगर खोजने जाना पड़ा।

कई स्वप्नों पर पानी फिर गया किन्तु चिन्तन किया तो वे प्रसन्न हो उठे। उनने निष्कर्ष निकाला कि "शशिकांत में जिज्ञासा और लगन रवीन्द्रनाथ से भी अधिक है। इसलिये यदि इसे और प्रेरित किया गया तो अवश्य यह रवीन्द्रनाथ से अधिक यश प्राप्त करेगा।

रवीन्द्रनाथ ने जिस अवस्था में कविता लिखना प्रारंभ किया, उसमें शशिकांत पहुंच गया था। कविता लिखने के लिये रवीन्द्रनाथ ने आसमानी रंग के कागजों की एक कॉपी बनाई थी। शशिकात के लिये भी वे आसमानी कागज की सुंदर जिल्दवाली एक कॉपी खरीद लाये। उसे कॉपी देकर स्नेह के साथ बोले, "अब तू रवीन्द्रनाथ बनने लगा है, इसमें कविता लिखा कर।" शशिकात कॉपी देखते ही ललचा गया। कॉपी तो ले ली पर बेचारा कविता कैसे लिखता? वह तो भली प्रकार से पढना भी न सीख पाया था। आखिर कॉपी का सदुपयोग वह पा ही गया।

भट्टाचार्य बाबू अब निश्चिन्त हो गये किन्तु एक दिन अचानक जब उन्होंने बाजार में एक बच्चे को रवीन्द्र-संगीत गुनगुनाते देखा तो वे शशिकांत की प्रगति का परिचय प्राप्त करने को उद्विग्न हो उठे। सकल्प करते ही सामने छींक हुई। फिर कुछ अपशकुन हुए। उनका मन काप उठा किन्तु बरसात के कारण गीले रास्ते पर वे दोनों हाथों से धोती को समेटते हुए चप्पलों से चट्ट-चट्ट कीचड और गंदे पानी के छींटे उछालते हुए घर की ओर चल पड़े। घर के द्वार पर ही वे ठिठक कर सिकुड गये। बरसाती नाला क्षिप्र गति से बह रहा था। मकान के अन्दर से आकर नाले में मिलने वाली छोटी नाली में बहती हुई आसमानी रंग के कागज की कुछ नावें चली आ रही थी। नावें नाले में एक पंक्ति-सी बना कर बह चली और पीछे ही उसी राह कॉपी की जिल्द के गत्ते बहते दिखाई दिये। उनने ध्यान से देखा, कॉपी वही थी लेकिन गत्तों के बीच कोई कागज न था। दुःख और क्रोध से भरे हुए वे एक हाथ अपनी गंजी खोपडी पर फेरते तथा दूसरे से धोती सम्हाले हुए घर में प्रविष्ट हुए। अचानक ही एक हवाई दुर्घटना ने उनके हवाई किले चूर-चूर कर दिये। चौक में पैर रखते ही आसमानी रंग के कागज का एक हवाई जहाज उनके ललाट से सहसा आ टकराया। भट्टाचार्य बाबू ने चौंक कर देखा, शशिकात हाथ मे आसमानी रंग के कागज का एक और हवाई जहाज लिये उड़ाने को तत्पर खड़ा था।

बियरा साहब की मेम साहब

● जी० बी० आजाद

जब से पुरी पहुंचे यही क्रम बन गया, सन्ध्या हुई और समुद्र तट की ओर चल दिये। पुरी के समुद्र तट का यही आकर्षण है। दिन भर बच्चे शायद सन्ध्या की प्रतीक्षा करते रहते। आज पूर्णिमा का दिन था—ज्वार देखने की उन्हें बहुत आतुरता थी। हम लोग एक किनारे पर बैठ गये और बच्चे अपने जूते चप्पल खोलकर पानी की लहरों से खेलने के लिए आगे बढ गये। समुद्र के विकराल स्वरूप से डरते सभी थे किन्तु पानी मे खडे होने का आनन्द वे छोड नही पाते थे। मैं और पत्नी दोनो पानी मे खेलते बच्चों की ओर बराबर देखते रहते। तभी भालमुडी वाला आया और हमने वही लेकर बैठे-बैठे खाना प्रारम्भ किया, कि इतने मे अरे···रे···रे ! आई वो आई की आवाज के साथ एक हलचल मच गई। सभी किनारे पर बैठे स्त्री-पुरुष अपने अपने वस्त्र, जूते, चप्पल उठाकर पीछे की ओर भागने लगे—लहर आई और निकल गई। इस सिन्धु तट पर यही क्रीडा चलती रहती है। मगर वह लहर अचानक बहुत दूर तक आ गई थी। पत्नी एक ओर भाग कर खडी हो गई और मैं दूसरी ओर। भाग दौड के बाद पहिले मैंने बच्चों को देखा और फिर उधर बढा जहा पत्नी अब बैठ गई थी। जब तक मैं पत्नी के पास पहुंचूं मैंने देखा एक अपरिचित महिला पत्नी से कुछ बात-चीत कर रही है। मैं कुछ दूर ही रुक गया—जब मैंने सुना तो वह कह रही थी—

चलिये, आपको मेम साहब वहा बुला रही हैं।

कौन मेम साहब ?

वही हमारी बियरा साहब की मेम साहब।

क्यों ? उन्हें यहीं भेज दो।

वह स्त्री कुछ क्रुद्ध मुद्रा बना कर कहने लगी—वो यहां नहीं आएगी, आप उनका चप्पल दे दो।

इस बार मुझे पत्नी के स्वर मे खिझलाहट और झुंझलाहट सुनाई दी—वह कह रही थी—अजीब औरत हो तुम, कह दिया मेरे पास किसी का चप्पल नही है। उन्हें देखना है तो वे आयें और देख जाय। ये सभी मेरे और बच्चो के चप्पल है। मुझे उनके एक चप्पल को लेकर क्या करना है ?

यह सुनकर वह स्त्री अपनी भाषा मे कुछ बडबडाती पूर्व की ओर चल दी। तभी पुनः आई-आई के शोर के साथ लोग इधर उधर पीछे हटने लगे।

मैंने पत्नी से पूछा—क्या बात है, यह स्त्री क्यो झगड़ रही थी ? पत्नी हंसते हुए कहने लगी—अजी देखो न व्यर्थ ही जाने कौन बियरा साहब की मेम साहब है कहती हैं कि उनका चप्पल हमारे पास आ गया है और उसे हमे लौटा देना चाहिए। मैंने उसे बहुत······पत्नी की बात पूरी होने के पूर्व ही मैंने देखा वही स्त्री किसी एक युवा सुन्दरी के साथ पुनः वहां आ पहुंची है। सभवतः वह उसकी स्वामिनी होगी। परन्तु इस बार उनकी स्वामिनी पत्नी की ओर न देख मेरी ओर दृष्टि गड़ाये जा रही थी। उसने मिने-तारिका की भाति अपने हाथ की अगुली को बडे अन्दाज से होंठो पर लगाते हुए पूछा—आपको कही देखा है ? प्रश्न अप्रत्याशित था, मैंने उपेक्षा के स्वर में कहा, हो सकता है, परन्तु कभी कभी ऐसा भ्रम भी हो जाता है। वह समुद्र की ओर देखते हुए कुछ सोचने सी लगी और पुन प्रश्न किया—आप यू० पी० के रहने वाले हैं न ? मैंने हसते हुए कहा—नही जी। उसने तत्काल प्रश्न किया तो आप कभी मेरठ मे नहीं रहे ? मैंने स्वीकार करते हुए कहा—मेरठ तो मैं रहा हूं। परन्तु मैं······हां···हां उसने शीघ्रता से प्रश्न किया और आपने बी०ए० की परीक्षा वहीं से दी थी न? मैंने कहा—हां ! तो आप मुझे नहीं पहिचानते ? आगुन्तका महिला के द्वारा प्रश्नों की इस बौछार से मैं दंग था ही परन्तु मैं याद नही कर पा रहा था कि आखिर यह है कौन ? मैं अपनी स्मरण-शक्ति पर बहुत झुंझला रहा था कि तब तक वह अट्टहास करती हुई मेरे समीप बैठ कर कहने लगी, अतुल भाई इतना जल्दी भूल गये निशा को। उसके द्वारा अपना नाम सुनकर तो मैं चौंक ही

परन्तु निशा का नाम ज्योंही सुना हक्का-बक्का रह गया। मैंने कहा— अरे निशा तुम! तुम यहाँ कैसे? उसने उसी प्रकार हँसते हुए कहा—जी हाँ मैं निशा। और आप पहिचान भी न सके। मैंने लजाते हुए कहा— सचमुच तुम इतना बदल गई हो निशा कि पहिचान पाना कठिन हो गया— लेकिन, लेकिन तुम यहाँ कैसे? मेरी बात का उत्तर देने के पूर्व ही उसने कहा और ये भाभीजी हैं न? और मुन्नू-मुन्नू भी तो होंगे। आप यहाँ आये कब? ठहरे कहाँ हैं? पलकों की झड़ी लगा कर कभी वह मेरी ओर देख रही थी तो कभी पत्नी की ओर। पत्नी की ओर अधिक देख रही थी। शायद पहिचान रही हो सोच रही हो और हानि लाभ का अनुमान लगा रही हो। उसके साथ वाली सेविका अब भी वैसे ही खड़ी थी। मुझे कुछ विचित्र-सी झेंप का अनुभव हो रहा था। शायद उसके वैभव को देखकर। वह इतनी बदल गई थी कि सचमुच पहिचाना ही नहीं जा पा रहा था। निशा अना-यास इतने वर्षों बाद और ऐसे स्थान पर मिल जायगी इसकी तो कभी कल्पना भी नहीं थी। मैंने कहा—एक-एक प्रश्न का उत्तर दूं या सब का साथ ही? उसने पत्नी की ओर खिसकते हुए कहा—अभी बच्चू जी की पुरानी आदत गई नहीं है। मैंने हँसते हुए कहा, मैं क्या करूं, तुमने एक साथ प्रश्न इतने किये कि उत्तर में किसे प्राथमिकता दी जाय यह निर्णय कठिन हो गया। खैर! आजकल मैं अजमेर में हूं, पिछले सप्ताह ही यहाँ आया था। सीतीर छोड़ कर जाने को जी नहीं करता है। और इनके विषय में तुम्हारा अनुमान ठीक ही है जिन पर तुम्हारी सेविका चप्पल हड़पने का आरोप लगा रही है वही तुम्हारी भाभी है विभा। बच्चे लहरों में और बालू से खेल रहे हैं। मगर तुम बताओ कि यहां कैसे? मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बजाय उसने विभा का हाथ पकड़ कर अपना मुंह उसके समीप ले जाते हुए कहा, विभा भाभी माफ कर दीजिये न, मेरी भूल हुई—यह आया है न तेलगू है, कुछ शऊर नहीं है। मैंने तो यह कहा था कि आपके बच्चों की चप्पल में तो कहीं हमारी चप्पल समुद्र के रेले पेले में नहीं आ गई। अपने पैर की एक चप्पल की ओर संकेत करते हुए उसने कहा भाग दौड़ में मेरी एक चप्पल कहीं खो गई है और इसने आपसे ऐसी गुस्ताखी कर ली। विभा ने बड़ी शालीनता से कहा—नहीं नहीं बहुत ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन निशा ने बच्चों की तरह मचलते हुए अपने दोनों हाथों में विभा के मुंह को पकड़ते हुए कहा—नहीं आप कह दीजिये न कि माफ किया।""मुझे बहुत""""आप नहीं जानतीं ये अतुल साहब बड़े वो हैं और यह कह कर

उसने व्यग्यपूर्वक मेरी ओर देखा। मेरे नेत्रों के सामने सिनेमा की रील की भांति निशा से सम्बद्ध जीवन की घटनायें घूमने लगीं।

लग रहा था आज भी निशा उतनी ही वाचाल, बातूनी, चंचल और दम्भी है। अपनी लम्बी लम्बी कलात्मक अगुलियों से सिर के बड़े से जूड़े को सभालती हुई कहने लगी, ओफ हो! कितना समय निकल गया। कितने वर्षों बाद हम मिल पाये। आप तो बिल्कुल पहिचान ही न पाये। हैं अतुल भाई क्या सचमुच आप निशा को नहीं पहिचान पाये? मैंने कहा— मैं तुम्हें सचमुच पहिचान नही सका। उसने फिर कहना प्रारम्भ किया— पिछली बार कब मिले थे हम—शायद उन्नीस सौ तिरेपन मे। इक्यावन मे तो बी० ए० दिया था न? सब पुरानी बातें सोचती हूं तो घटो खो जाती हूं। मैंने उसे अनवरत अपनी ही भावुकतापूर्ण बातें करते देख पूछा, लेकिन यह बताओ कि तुम इतनी दूर कैसे आ पहुची? इस बार उसने एक तीखी नजर से मेरी ओर देख बालू मे अगुलियो से कुछ मिटाते बनाते कहना प्रारंभ किया। आप तिरेपन मे मेरठ छोड़ गये। शायद चार पाच मास बाद ही पिताजी का हार्ट फेल्योर से निधन हो गया। भाई बहुत छोटा था। घर की निर्धनता और पिताजी की मृत्यु से मा का दिल टूट गया। खैर छोड़िये, उन बातों को कहकर मैं आपके मन मे विषाद नही उत्पन्न करना चाहती। माताजी को मेरे अविवाहित होने का बोझ सहन नहीं हो पा रहा था। चाचाजी के आग्रह से शीघ्र विवाह कर देने का निर्णय कर लिया गया। पूर्वोत्तर रेल्वे मे काम कर रहे एक साधारण से पढ़े-लिखे व्यक्ति के साथ मेरा विवाह कर दिया गया। उन दिनो आप कहा थे, पता नही परन्तु मैंने यह जानने की बड़ी कोशिश की परन्तु निष्फल रही। मैं इस विवाह से सहमत नही थी किन्तु विवश थी। खैर! ईश्वर जो करता है ठीक ही करता है। विवाह के कुछ दिनो बाद ही किसी कारण से इनकी बदली वहा से बिहार मे हजारीबाग और वहा से कुछ वर्षों बाद बंगाल के खड़गपुर मे हो गई। पाच वर्ष खड़गपुर रहने के उपरान्त आठ वर्षों से हम वाल्टियर मे हैं। तीन बच्चे हैं। अपना निजी फ्लेट है; सब ठीक है। अपना गुजारा चल जाता है। मैंने बात समाप्त होते देखकर पूछा—तुम खुश हो? उसने तत्काल उत्तर दिया, अतुल भाई मैं बहुत खुश हूं। लेकिन आप कहिये अब तक कितनी पुस्तकें छपवा चुके हैं? बगला भी बनवा लिया होगा या सब बैंक बेलेन्स ही बना रहे हैं? उसके रूप, वैभव और सुख की बातें सुनकर मुझे मन ही मन हीनत्व का अनुभव होने लगा था। हीनत्व को उभरते देख उसे दबाने के

लिये मेरा अहम् अस्वाभाविक रूप से विकल हो उठा। मैंने हंसते हुए कहा हूं तो यह बात है निशाजी अब चांद तारों से खेलती हैं। देखा विभा! यह है निशा जिसे संध्या जगाती और उषा सुलाती है। पत्नी ने कहा, अब यहीं बैठकर इनसे सारी बातें करोगे या इन्हें घर भी बुलाओगे। यहां से तो उठो रात हो चली है बच्चों को लेकर चलना है और इन्हें कल खाने पर क्यों न बुला लो वहीं पूरी बातें करेंगे। क्यों निशाजी हमारा निमंत्रण स्वीकार? निशा ने उसी भावुकता और अंदाज से कहा—विभा भाभी क्या बताऊं मन बहुत टूटता है लेकिन क्या करूं आप भाग्यशाली हैं। कई छुट्टियां यहां बिता सकतों हैं परन्तु मुझे तो आज ही रात को चलकर सवेरे वाल्टियर पहुंचना है। आज रविवार था उनका भी आफ रहता है चली आई। कल सभी बच्चे स्कूल जायगे, वे ड्यूटी पर। सब देखरेख तो अपने ही को करनी पड़ती है। आयाओं पर या नौकरों पर कैसे छोड़ा जा सकता है। किन्तु आप वादा कीजिये कि कभी निशा के यहां अवश्य आयगे—आओगे न अतुल भाई! तुम्हें देखो जरूर आना पड़ेगा। ईश्वर जाने कैसे इतने वर्षों बाद भेंट हो गई और वह भी चन्द मिनटों की। निशा के शीघ्र चले जाने के निर्णय से मैं विकल नहीं था। सोच रहा था चला जाना ठीक ही है। ठहरेगी तो विभा के सामने जाने क्या बकझक करती ही रहेगी। परन्तु प्रकट में कहा, निशा! क्या वैभव कभी परवशता से मुक्त नहीं रह सकता? उसने प्रश्न-सूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने कहा—दो दिन हम यहां रुक नहीं सकते? उसने हंसते हुए कहा, नहीं कवि महाशय नहीं। "का बरसा जब कृषि सुखाने?" अच्छा तो आओगे ना? बोलो। मैंने शिष्टाचारपूर्वक हंसते हुए कहा—मौका मिलते ही अवश्य आयगे। अनन्तर रिक्शों में हम साथ साथ चल दिये। रिक्शे समानान्तर ही चल रहे थे। वह कह रही थी वाल्टियर बहुत अच्छी जगह है जरूर आना। विशाखापट्टनम में शिपिंग यार्ड हारबर, आइल रिफाइनरी, बेजी आदि कई जगह देखने की हैं। हारबर के पास ही ऐशियाटिक शिप रिपेयरिंग कम्पनी है। उसके दाईं ओर एक बड़ी पानी की टंकी के पास ही हम रहते हैं। रिक्शा चल रहा था और वह बराबर अपने स्वभाव के अनुसार कुछ न कुछ कहे ही जा रही थी। मैं हां हूं कर रहा था जाने वह उसे सुनाई दे रहा था या नहीं। निशा स्वभाव से ही ऐसी है। जब बात करनी है तो तार नहीं टूटता। आज भी वह ऐसी ही है।

× × ×

"निशा के मिल जाने से आज विलम्ब हो गया।" पत्नी के कथन का आशय मैं समझ गया कि अब खाना वह बना नहीं सकेगी। मैंने कहा—कोई बात नहीं चाहो रेस्टोरेन्ट में इडली डोसे की दावत हो जाये चाहो जगन्नाथ के मंदिर मे दाल-भात। विभा ने कहा—भात ही खायेंगे। मैंने कहा बिल्कुल ठीक 'जगन्नाथ के भात और जगत पसारे हाथ' पुरानी कहावत है चलो भात का ही प्रसाद पावें। मंदिर से खा-पीकर जब घर लौटे तो विभा बच्चो से कह रही थी मुझ से क्या पूछते हो? अपने पापा से पूछो मैं स्वयं नही जानती। बच्चो ने पूछा—पापा ये कौन मेम साहब थी? बच्चो के इस प्रश्न को संभवत: मैं टाल भी जाता या संक्षिप्त कर देता परन्तु इसके पीछे विभा की आतुरता को शान्त करने के लिये मैंने उन्हें बता दिया कि निशा से मेरी पहिली जान-पहिचान बहुत ही नाटकीय थी। विभा ने पूछ ही लिया कैसे? मैंने कहा, बी० ए० की परीक्षा हम दोनों एक ही कमरे में दे रहे थे और साथ साथ हमारी सीटें लगी थी। निशा बहुत चालाक थी। उस ने नक्ल करने के लिये एक कागज निकाला। शायद कुछ नक्ल की भी हो कि तभी इन्वीजीलेटर को संदेह हो गया। निशा ने शीघ्र उस कागज को मूस कर सीट के नीचे फेंक दिया। दूर फेंकने का अवसर था नहीं। जब पूछताछ हुई तो उसने स्पष्ट कह दिया कि यह कागज मेरा नहीं है। वीक्षक ने पूछा, फिर किसका है? उसने बड़ी दृढ़ता से मेरी सीट की ओर संकेत करते हुए कह दिया शायद इधर से फेंका गया है। एक अपरिचित लड़की के द्वारा परीक्षा भवन मे ऐसा मिथ्या आरोप सुनकर मैं विक्षुब्ध हो उठा। मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा—मैंने फेंका है? शर्म नहीं आती झूठ बोलते हुए। उस समय निशा की अवस्था बहुत दयनीय हो गई। झूठ के पैर कहां होते। वह रो पड़ी। हम दोनों को केन्द्र-अधीक्षक के पास ले जाया गया। मार्ग मे मैंने निशा की ओर देखा तो वह याचनाभरी दृष्टि से शायद कुछ निवेदन कर रही थी। अनायास ही उसकी उस मुद्रा को देख कर जाने क्यों मैं कारुणिक हो उठा। अधीक्षक ने जब निशा से पूछा तो वह फूट फूट कर रो पड़ी। मुझे लगा यह मेरे पौरुष को चेतावनी है। मैंने बिना पूछे ही कहा—साहब सच बात यह है कि यह पुर्जा तो मेरा ही था परन्तु मैंने इसमें से कुछ नहीं लिखा है। उन्होंने कागज दिखाते हुए डांट कर पूछा फिर तुम इसे लाये क्यों? मैंने कहा विश्वास कर सकेंगे। मुझे शौक लाने का शौक है। बहिन ने इसमें बांध दी थी। मैंने शौक लाकर इसे गलती से यहीं डाल दिया—हां इसमें से यदि मैंने कुछ नकल किया हो तो आप [illegible]

मिला में। कापी दिखाई गई उसमें कुछ नहीं था। एक अन्य प्रोफेसर ने जो बहुत चालाक लगता था कहा—यह तो सब ठीक है मगर पुर्जे की लिखाई तुम्हारे हाथ की तो नहीं लगती। यह तो किसी लड़की के हाथ का राइटिंग है। मैंने तुरन्त कहा आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं यह पुर्जा मेरा नहीं मेरी बहन का है। यह दुर्घटना दैव-योग से ही हो गई है और मैं इसके लिये अत्यन्त क्षमाप्रार्थी हूं। प्रिंसिपल साहब बहुत ही दयालु और संजीदा थे। वे बोले मैं चाहूं तो तुम दोनों को तीन वर्ष के लिये परीक्षा से डिबार कर सकता हूं। मैंने कहा—मैं आपके अधिकार को स्वीकार करता हूं परन्तु मैं निर्दोष हूं। उन्होंने कागज को फाड़कर फेंकते हुए चेतावनी के स्वर में कहा भविष्य में ऐसा कभी न करना। निशा यह सब नीची दृष्टि कर शान्त भाव से सुनती रही। आधा घंटा व्यर्थ हो गया, पूरा एक प्रश्न छूट गया परन्तु जब परीक्षा-हाल से निकला तो ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे मैंने कोई बहुत बड़ा काम किया हो।

निशा को मैं तब तक पहिचानता भी नहीं था, परन्तु शाम के चार बजे के लगभग मैंने देखा कि निशा एक अधेड़ आयु के व्यक्ति के साथ मेरे मकान के दालान में प्रविष्ट हो रही है। मैंने अनुमान लगा लिया कि यह व्यक्ति निशा का पिता ही होगा। मैंने खड़े होकर उनका स्वागत किया। निशा ने कहा—यही है अतुल। निशा के पिताजी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख कर कहा बेटा तुमने आज निशा को बचाकर बड़ी जोखिम उठाई परन्तु यदि ऐसा नहीं करते तो गजब हो जाता। मुझे निशा ने सब सच सच बता दिया है। निशा को पढ़ाना दूभर हो जाता। जाने कैसे हम उसे पढ़ा रहे हैं। इसका भविष्य नष्ट हो जाता। तुमने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। मैं इसे कभी भूल नहीं सकूंगा। उनकी इन बातों को बीच में ही रोक कर मैंने कहा—नहीं नहीं ऐसी कोई बात नहीं है आप ऐसा कोई ख्याल न करें। वे मुझे घर आने का निमंत्रण देकर निशा के साथ चले गये। बस तभी से हमारा परस्पर आना-जाना प्रारम्भ हो गया। परिचय बहुत घनिष्ठ हो गया। बच्चे सुनते २ सो गये थे परन्तु विभा ध्यान से सुन रही थी। उसने पूछा फिर? मैंने कहा फिर क्या? मैंने करवट लेते हुए कहा—फिर क्या होता? विभा ने जिज्ञासापूर्वक पूछा, आप लोग अलग २ कैसे हो गये? मैंने कहा अलग न हुए होते तो तुम कैसे मिलती? परन्तु इस टालमटोल से विभा न मानी और मुझे कहना ही पड़ा, उस मुक्त परिचय का वही परिणाम हुआ जो स्वाभाविक है। प्रणय की चर्चा चली और फिर विवाह की।

परन्तु दो अलग-अलग जातियों की दीवार ने इसे रोक दिया। विद्रोह उठा परन्तु निशा की माता की दृढ़ता के कारण कोई फल न निकला। तभी मुझे नौकरी के चक्कर में मेरठ छोड़ना पड़ गया। और उसके आगे की बात निशा ने तुम्हें सुना ही दी है।

पुरी से कलकत्ता जाने को मैंने दो दिन पूर्व ही टिकिट बनवा लिये। लेकिन जिस दिन जाने को स्टेशन पहुंचे तो मालूम हुआ कि पुरी-कलकत्ता के बीच वर्षा की अधिकता से यातायात स्थगित कर दिया गया है और कलकत्ता के लिये यात्रियों को व्हाया वाल्टियर-टाटानगर भेजा जा रहा है। हमें भी उसी गाड़ी से जाना पड़ा। संयोग की बात थी कि वाल्टियर का प्रोग्राम न होते हुए भी वाल्टियर होकर जाना पड़ रहा था। हमने एक दिन के लिये वाल्टियर रुकने का निश्चय किया। रात दस बजे हम वाल्टियर जंकशन पहुंचे। केवल एक दिन रुकने का विचार था इसलिए वेटिंग-रूम में ही स्टेशन पर टिक गये। स्टेशन की ऊपरी मंजिल में बने वेटिंग-रूम बहुत साफ सुथरे और सुन्दर थे। शायद नये ही बने थे। यात्रियों का तांता लगा रहता था। वेटिंग-रूम का बेरा प्रत्येक आने वाले यात्री का एक नजर में परीक्षण करता और फिर अपने काम में लग जाता। आने वाले यात्रियों का सामान कुलियों से उतरवाता, रखवाता और जाने वालों का सामान कुलियों से चढ़वाता। कोई कुली बिना उसकी अनुमति के न सामान रख सकते थे, न ले जा सकते थे। प्रत्येक जाने वाला यात्री उसे 'टिप' देकर जाता था। टिप में दिये गये नोटों की साइज के आधार पर वह उनको सलाम झुकाता। रेजगी शायद उसे पसंद नहीं थी। एक युवा यात्री ने जाते समय उसे पचास पैसे का सिक्का दिया जिसे उसने वापस लौटा कर मुंह फिरा लिया। युवक समझदार था, वह समझ गया। उसने शीघ्र एक रुपये का नोट दिया जिसे उसने स्वीकार कर लिया और तभी कुली सामान लेकर चल दिये। नीली वर्दी पहिने स्वस्थ और गौर वर्ण का बेरा हर समय व्यस्त दिखाई देता था। सवेरे उसने मुझे अपने घूमने का प्रोग्राम निश्चित करने में मदद दी। चाय पीकर जब हम घूमने को चलने लगे तो मैंने देखा मेरे पास खुले रुपये नहीं हैं। अनजाने स्थान पर खुले रुपये लेने देने में असुरक्षा भी रहती है—मैंने बेरे से कहा, कहीं से सौ रुपये के खुले तो लाओ। उसने नोट लेकर तुरन्त अपनी जेब से अव्यवस्थित नोटों को निकाला और सौ रुपये गिनकर दे दिया। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। घूम फिर कर पूछा—यहां कब से हो? उसने कहा, यहीं आठ-दस वर्ष से।

कितनी तनख्वाह मिलती होगी ? साहब ! तनख्वाह क्या मिलती है, तनख्वाह से गुजारा थोड़े ही चलता है—महिने भर में जितनी तनख्वाह मिलती है उतना तो रोज आप जैसे मेहरबानों से बख्शिश मिल जाता है। सौ डेढ़-सौ यात्री रोज आते जाते हैं, और फिर यह विजिटिंग स्पॉट है—लोग खर्च करते ही हैं। महगाई भी कितनी है। लेकिन खुदा का शुक्र है सब चलता ही है—कहते कहते वह वेटिंग-रूम में जाने वाले मुसाफिर का सामान उठवाने में मदद देने लगा। उसकी बात सुनकर मैं दंग रह गया। एक नया अनुभव था। काले बाजार में व्योपारियों के बनने की बात सुनी है। मिनिस्टर बन कर करोड़ों रुपया मारने की बातें पढ़ी हैं। अफसर बन कर लाखों की रिश्वत खाने की बात भी देखी है। लाइसेन्स और परमिट के विनिमय में गहरे मुनाफे की जानकारी भी है। कस्टम एक्साइज वालों के तो पौ-बारह रहते ही हैं। रेल बस का चैकिंग स्टाफ भी रोज आमी चादी बनाता ही है और थोड़ा बहुत आज तो सभी जगह चलता ही है। परन्तु वेटिंग-रूम के बेरे की यह आय तो उससे बिल्कुल भिन्न है। यह शुद्ध बख्शिस है, इनाम है, टिप'। मुझे मन ही मन अपनी शिक्षा-दीक्षा, पद-प्रतिष्ठा और वेतन की बात सोच कर फ्रस्ट्रेशन-सा होने लगा।

कार्यक्रम के अनुसार आइल रिफायनरी व हिन्दुस्तान शिपिंग यार्ड देख कर जब हम हारबर पहुचे तो भूल से प्रवेश के स्थान पर प्रस्थान द्वार पर उतर पड़े। इसलिये धूप में पैदल चल कर ही प्रवेश द्वार की ओर जाना पड़ रहा था। चारों ओर बड़ी बड़ी क्रेन्स घूम रही थीं। सड़क के एक ओर एक बड़ा बोर्ड लगा था। जिस पर लिखा था— "एसियाटिक शिप रिपेयरिंग कम्पनी"। इस नाम को देखते ही निशा के द्वारा बताया स्थान याद आने लगा और मैंने पूछा—विभी निशा आटो वान्टियर का उनका क्या पता बता रही थी, यही है न और विभी ने उस बोर्ड को पढ़ते हुए कहा—हां-हां ऐसा ही कुछ था परन्तु वे घर के पास पानी की एक टंकी बता रही थी और उंगली से संकेत करते हुए उसने बताया, देखिये वही तो टंकी नहीं है ? मैंने देखा कुछ ही दूरी पर पानी की एक बड़ी टंकी बनी है। हम उसी ओर बढ़ चले। एक बहुत ही सुन्दर से फ्लैट के सामने वही आया खड़ी थी—विभा ने उसे तुरन्त पहिचान लिया। आया ने भी हमें पहिचान लिया। उसने अन्दर जाकर तुरन्त निशा को खबर दी। निशा तत्काल दरवाजे पर आ पहुंची और बहुत ही स्नेह व सम्मान से हमें अन्दर ले गई। अचानक और इतना जल्दी हमारे पहुचने पर उसे आश्चर्य और

मैं मन मे सोच रहा था जैसे इस व्यक्ति से मैं पहिले मिल चुका हूँ और बहुत पहिले नहीं कहीं ताजा ही भेंट हुई है परन्तु याद नहीं आ रहा था। विभा ने पूछा—ये क्या करते हैं ? शायद किसी ऊंची पोस्ट पर हैं ? विभा के इस प्रश्न का मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। विभा ने फिर पूछा—क्या नाम है ? बियरा साहब, कोई ईसाई हैं या पारसी ? मैंने अन्यमनस्क भाव से गर्दन हिला कर कहा—पता नहीं।

हावडा के लिये गाडी रात ६ बजे जाती थी। मिमहाचलम मंदिर से लौट कर हम साढे आठ बजे स्टेशन पहुचे तो देखा गाडी आ चुकी थी। जल्दी से वेटिंग-रूम में जाकर सामान ठीक किया। कुलियो ने सामान उठाया। वही सवेरे वाला बेरा मौजूद था। उसे देख मैं ठिठका—शायद दिन भर रेस्ट कर अभी ही अभी ड्यूटी पर आया था क्योंकि हमारे आने के समय वह किसी दूसरे बेरे से यात्रियो के सामान का चार्ज ले रहा था। जाते समय मैंने उसे दो रुपये का एक नोट दिया। उसने लेकर नम्रतापूर्वक सलाम किया। विभा और विकी दोनों बेरे की ओर घूर-घूर कर देख रहे थे और वह व्यस्त था यात्रियों को निपटाने में। जीना उतरते समय विभा कहने लगी—यह बेरा बिल्कुल बियरा साहब की शक्ल का है क्यों जी ? मैं स्वयं आश्चर्य मे था। रेल्वे बेरे की यूनिफार्म में यही तो बियरा साहब है—यही तो हैं निशा के पति……।

•

पढ़े-लि

● ग्रजे

वह दात पीसकर, भूखे गिद्ध की तरह मेरी ओर
डेढ़ वर्ष के पप्पू को जबरन छीनकर ऊपर अपनी पत्नी को दे
अवाक् उसके चेहरे की ओर देखता रह गया। मुझे लगा, कि
वाली मेज पर धरे कप-बसी (अपने आप) बजने लगे हैं। पूरा
रहा है। तभी उसका बड़ा लड़का चार वर्ष का प्रकाश मेरे समी

"ताऊजी ! ताऊजी !!"

"आज भी चौकलेट मिलेगी न, चलें उस दूकान पर

मेरी देर से अपलक खुली आखें, दो नन्ही नन्ही आ
कर नम हो आती हैं। वह एक बार फिर मेरी ओर उससे
भरा वह मुद्रा में झपटता है, "प · र · का " श !" एक-एक
जाता है उसके होठों से बाहर आकर शब्द बिखर जाता है।
(प्रकाश का) नन्हा सा पंजा मरोड़ कर अपनी ओर खींच लि
अब और अधिक नहीं सह पाकर किशन को जलती नजर से दे
प्रकाश रोने लगा है। उसकी रुलाई में मेरा सारा आक्रोश डूब
नहीं चाहते हुए भी बासी अखबार के पन्नों में गड़ जाना चाहता

समय का एक पन्ना और मेरे सामने खुल जाता है।

२६ जनवरी की शाम ! मुझे खाना किशन के यहां
था। कोई विशेषता नहीं, न अतिथि जैसा उत्साह ! किशन
अपना घर ! उसके बच्चे अपने बच्चे ! तीन साल के भीतर
अभिन्नता मुझे कितना मजबूर बना चुकी है ? मैं यहां रहते हुए
उनसे मिल न सकूं, जितनी अधूरी सी लगती है। उनका भी

है। उम्र में काफी छोटा होकर भी वह समझदार दोस्त बन गया है। मैं प्रभावित हूं उसके चरित्र से। एम. ए., बी. एड होकर भी वह उस जगह खड़ा है, जहां से घर के आदमी का स्तर बहुत दूर तक लगता है। एक [illegible] उदास, [illegible], पांचवीं कक्षा को पढ़ाने वाला मास्टर, दो बच्चों का पिता और एक दुबली-पतली चिड़चिड़े स्वभाव वाली पत्नी का पति।

फिर भी हमेशा मुझे हाथ मुट्ठियां उलीचने वाला किशन, मेरी [illegible] ज़िन्दगी में ऐसे उतर गया, जैसे दूध में पानी!

"कैसे बने लड्डू?"

"अच्छे हैं! तुम खानदानी ब्राह्मण जो हो!"

"यार, भाई साहब, आप तो मजाक करते हो!"

"नहीं तो, इसमें मजाक की बात क्या है?"

"अच्छा, जो कुछ है, यह है। जिसकी इच्छा हो खाये! नहीं तो मौज करे।"

ममता कनखी नजर से देखकर मुस्कराती है। मैं अपना दूसरा लड्डू भी समाप्त कर किशन को गहरे अपनत्व से देखता हूं। प्रकाश के मुंह में बचा हुआ चूरमा देता हूं, पप्पू किलक कर मेरी गोद में आ लुढ़कता है। मैंने गलत नहीं कहा था, किशन का घर अपना घर! उसके बच्चे, अपने बच्चे।

किशन केवल दो सौ रुपल्ली का मास्टर ही नहीं, इस रेस्तरां 'मित्र जलपान गृह' का प्रोप्राइटर भी है। पचास-साठ की बिक्री रोज होती है। और मैं भी तो एक ग्राहक बनकर ही आया था यहां। व्यवहार ही बहुत अच्छा था इस तरुण का।

रंज और खुशी में बराबर साथ देने वाला किशन, अलग-अलग व्यक्तित्व जीने वाला आदमी! जितना अच्छा दुकानदार था, उससे कहीं अधिक अच्छा दोस्त भी। तथ्य यह कि मैं किशन की हर बात से सहमत था। कुछ दिनों से महसूसियत इस हद तक पहुंच गयी, दोनों में से किसी एक की पीड़ा, दूसरे के लिए भी समान चुभन देने वाली सी लगने लगी।

कभी-कभी स्तंभित रह गया हूं, इस घनिष्ठता पर। और

माने वक्त की अनजान स्थिति से भयभीत भी। वहीं कभी किशन का दूकानदार अधिक प्रबल हो आया तो दोस्त कमजोर तो नहीं पड़ जाएगा? कहीं दोनों में से किसी का भी स्वार्थ अधिक ऊपर आ गया तो!

लेकिन नहीं, मेरे मन में किशन के विश्वास की चमक कभी धुंधलाई नहीं है। उसने कभी मुझसे और ग्राहकों की तरह मासिक हिसाब का लेखा-जोखा नहीं मांगा है। मैंने जब भी जितना दिया है, वसूली लिया है। वह उदार मन भी बहुत है, उसने न जाने कितने मिलने वालों को अपना पैसा बांट रखा है। 'पैसा तो हाथ का मैल है भाई साहब, धरा-धरा दूध थोड़े ही देता है? अच्छा है, अगर वक्त पर किसी के काम आता है।' ऐसे ही कहता रहा है किशन! और मैं पिछले तीन महीनों से एक भी पैसा दूकान खाते में जमा नहीं कर पाया हूं। परिस्थिति ही कुछ ऐसी चल रही थी, कभी कुछ तो, कभी कुछ! पारिवारिक खर्च का संतुलन बने, तभी तो हाथ ढीला हो अतिरिक्त भार कम करने को।

पहली तारीख से पांच तारीख तक किशन पक्का दूकानदार रहता है। उसका ध्यान हिसाब करने में ही लगा रहता है। आर. एस. सी. बी. का पूरा स्टॉफ यहीं लंच लेता है, और भूमि विकास बंधक बैंक के भी लगभग सभी कर्मचारी इसी रेस्तरां के ग्राहक हैं।

किशन का चेहरा तमतमाया हुआ है। वसूली इस महीने भी पूरी नहीं हुई है। सुबह के दस बजे हैं, लोग आफिस की तैयारी में लगे हैं। जो पूरा हिसाब कर चुके हैं वह फिर चालू महीने के खाते में शुरू हो गये हैं। तीन चार एल डी. सी. चाय की चुस्कियों के साथ ताजे अखबार की लाइनों को भी उतारते जा रहे हैं।

"मदनसिंह! आज भी नहीं आया?"—किशन उन लोगों को सुनाकर पूछता है।

"वे तो वह परसों ही ले चुका।" उनमें से एक कहता है।

"कैसा वक्त आ गया यार, एक तो तीस दिन तक उनका हुकम बजाओ, फिर देते वक्त जाने क्यों नब्जें खिसकने लगती हैं।" किशन, और लोगों से समर्थन पाने की भावना से कहता है।

"वैसे है तो वह साफ आदमी।" दूसरा बाबू कहता है।

"इस बार उसकी तीन चार दिन की पे भी कट गई है।" तीसरा कहता है।

"घर में सिर्फ एक मां है, वह भी गांव रहती है। कहता था उस ओर बर्फ गिरने से मौसम बहुत ठंडा गया था, और मां की सांस भी उखड़ आयी थी, तभी तो अधिक दिन लग गए वहां।" पहला आदमी उसके फोर्थ क्लास की सफाई देता है।

किशन उसकी किसी भी परिस्थिति से सहानुभूति नहीं बनाते भन्नाता है। 'फिर ये लोग उधार करते क्यों हैं? क्यों खाते हैं नमकीन? क्यों लेते हैं चाय? कुछ भी हो, इस बार मैंने पूरी वसूली का निश्चय कर लिया है, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो। सालों ने हराम का माल समझ रखा है। पूरे पन्द्रह रुपये पैंसठ पैसे दुकान के, दस नक़द पूरे छब्बीस नोट नहीं उगलवा लूं तो मेरा नाम नहीं।"

"चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो?" बाहर एक स्याह चादर-सा मुझे चारों ओर से ढक लेता है। भीतर ही भीतर एक अग्नि सी सुलगती जाती है।

वह बड़बड़ाता रहता है, 'यहां कोई मसाइल थोड़े ही खोल रखा है, जो आये, खाया पिया और चल दिये नाम देकर!" वे सभी बारी बारी किशन की ओर देखते हुए खिसक जाते हैं।

रह जाता हूं मैं! जिसने तीन महीने से कुछ नहीं दिया है। क्या मैं इसी विश्वास पर यहां उसी शान के साथ आता रहूं कि किशन मुझसे कुछ नहीं कहेगा, लेकिन कब तक? और क्यों नहीं कहेगा वह? उसे कहना ही चाहिए। वह बहुत अधिक उद्विग्न होकर स्टोर के अन्दर-बाहर [illegible] जा रहा है। क्या पता, वह भीतर ही भीतर मुझे भी कोसता रहा हो। और यह भी क्या जरूरी है कि वह मेरे समक्ष ही मुझसे भी तकाजा करे, परोक्ष में ही शायद कुछ कहता हो।

पौने ग्यारह हो चुके हैं। [illegible] बन्द हुए होंगे। स्कूल भी तो जाना है। मैं नहीं चाहते हुए भी पैन्ट की जेब में हाथ डालकर नोट निकालता हूं, केवल पच्चीस रुपये! [illegible] होंगे? दस तो रुपये भी नहीं हुए। मेरी तनख्वाह उधार की [illegible] है।

'लो भई किशन! ये अपने भी जमा कर लो।' मैं [illegible]

करके काउन्टर पर रुपये सरकाता हूं। किशन यंत्रवत् काउन्टर की ओर ग्रामुख होता है। अजीब-सी नजर से मेरी ग्रोर देखते हुए, चील झपट्टे जैसे अभिनय के साथ नोट उठा कर पैन्ट की जेब मे खोस लेता है। मुझे लगता है, जैसे मैंने यह राशि देकर भी कुछ नही दिया है। वह झटके के साथ लेखा-पुस्तिका खोलता है, ग्रौर वाश-बेसिन मे, पिच् से जर्दे की पिचकारी छोडता हुग्रा, उसी झटके से पैन झाडकर पैसे जमा करता है, ग्रौर फिर पूरी ताकत से तीस किलो दूध का पतीला उठाकर स्टोव पर धर देता है। तभी मेरी नजर ग्रनायास टैगोर के चित्र के नीचे, चिपके एक साधारण से चौकोर कागज पर जाकर ठिठक जाती है—

"कृपया, इस माह की पाच तारीख तक सब ग्राहक वृन्द अपना-ग्रपना हिसाब चूकता करने की कृपा करे, अन्यथा भविष्य मे 'मित्र' (मित्र जलपान गृह) उनकी सेवा करने मे विवश रहेगा।"

"यह तुमने लिखा है किशन ?" मैं पूछ बैठता हू।

"ग्रौर कौन लिखेगा ?" वह दो टका जवाब देकर चुप हो जाता है। और मुझे लगता है, पैसे का पहाड चढने की मजबूरी मे दोस्ती की बैसाखी कितनी छोटी हो गई है ? मैं तलाशता रह जाता हूं दूकानदार के चेहरे मे उस भोले-भाले चेहरे को, जो एम ए, बी एड होकर रिक्शे वाले, टागे वालो तक से भाई-चारे का व्यवहार रखता था। कहा गया वह किशन जो मेरी उपस्थिति मे हर क्षण ठहाके लगाकर मुझे भी ही ही ही करने को विवश कर देता था, पौने बारह हो चुके है, ग्रौर मैं स्कूल की जल्दी होने पर भी, यहा से जाने की जल्दी मे नही हूं।

तभी एक उदास-उदास सा मुह लटका चेहरा भीतर प्रवेश करता है—

"कितने पैसे देने हैं भाई साहब ?"

किशन रटे हुए पहाडे-सा तत्क्षण ही कह उठता है, "पूरे छब्बीस रुपये !"

यह मदनसिंह ही हो सकता है। ग्रार एम सी बी का फोर्थ क्लास। मुझे पहचानने मे देर नही लगी। वह कपकपाते हाथ मे कुछ नोट किशन के ग्रागे बढ़ा कर कहता है, "लो भाई साहब, ग्रभी ये सोलह तो जमा कर लो, बाकी मैं ......"

कभी से दबे घुटे ज्वालामुखी सा फूट पड़ता है किशन। 'सोलह की ऐसी-तैसी! अभी पूरी रकम चाहिए मुझे पचीस रुपये पैंसठ पैसे।"

"मगर, किशन भैया! मेरी बात तो सुनो।" मदनसिंह गिड़गिड़ाता है फिर रेस्तरां की ओर दो-तीन और ग्राहकों की आमद देखते हुए धीमी आवाज में कहता है, "मेरी इज्जत का सवाल है भैया!"

आगन्तुक भीतर आकर बैठ जाते हैं। किशन सोलह नोटों को फर्श पर फेंकते हुए झल्लाता है, "इज्जत बचाने की तो वह बात करे, जिनकी इज्जत हो। उधार खाने वालों की इज्जत तो उसी रोज धुंधला जाती है, जब उनका नाम हमारी कॉपियों में लिख जाता है।"

मदनसिंह जोर से ओंठ काटते हुए भी चुप रह जाता है। किशन की आंखों से चिनगारियां निकल रही हैं। मेरी दृष्टि के सामने साठ रुपये की तस्वीर और भी स्पष्ट हो जाती है। हो सकता है, एक दिन मुझसे भी पूरे हिसाब की बात कही जा सकती है।

मदनसिंह रुंआसा-सा होकर छत की ओर देख रहा है। वह पचा नहीं पा रहा यह समय की घूंट!

"अब छोड़ो भी किशन, बहुत हो चुका। बाकी पैसा भी आ जाएगा।"

किशन मेरी ओर अजनबी की तरह देखता है—कहता है—"आप चुप रहिये भाई साहब। यह दूकानदारी का हिसाब है। भाई बन्दो नहीं।"

मैं क्षण भर के लिए अवाक् किशन के चेहरे की ओर बहुत कुछ पढ़ लेने जैसी मुद्रा में रह जाता हूं। किशन का धीमे-धीमे बड़बड़ाना जारी रहता है। "सालों ने धर्मखाते की दूकान समझ रखी है? और फिर नाक लगाते हैं। हम तो जब जानें, जब महीने के महीने कम्पलीट हिसाब कर दें। जब लेते वक्त कोई नहीं जानता, तो देते वक्त यह तू तू मैं मैं क्यों?"

"लेकिन, लेना तो पैसा ही है, या किसी की इज्जत!" मैं कुछ उखड़-सा जाता हूं।

"यार कहा न भाई साहब, आप चुप रहो।"

"इसमें चुप रहने की बात क्या है? आखिर, चलता-चलता मान

मैं बदस्तूर बड़बड़ाये जा रहा हूं ।

लगभग महीने भर बाद दुकान पर जाता हूं, बचे हुए पैसे बिना कुछ कहे काउंटर पर रख देता हूं । आज भी वही नये महीने की तीन तारीख है । किशन के चेहरे पर दोस्त जैसी सहानुभूति, या अधिक दिनों बाद मिलने जैसी कोई जिज्ञासा नहीं है । वह सम्पूर्ण रूप से दुकानदार होकर पैसे उठा कर गल्ले में डाल लेता है । फिर वही बही खुल जाती है, जिसमें उधारी के धरातल पर मुझ और मदन जैसे अनगिनती लोगों का व्यक्तित्व लिखा जा चुका है ।

मैं देर तक खोयी-खोयी नजरों से अपने चिर-परिचित दोस्त को खोजने का असफल प्रयास कर रहा हूं—

तभी प्रकाश आकर मेरे गले में अपने नन्हे-नन्हे हाथ झुला देता है, "ताऊजी, ताऊजी ! बहुत दिनों बाद भी टॉफी नहीं खिलाओगे ?"

"जरूर खिलाएंगे बेटे !"

मेरे उठने से पूर्व ही किशन भूखे गिद्ध-सा आकर प्रकाश को अपनी ओर खींच लेता है । "प" "र" "का" "श" अक्षर, अक्षर जल उठा है उसके ओंठों से बाहर आते ही पूरा शब्द बिखर गया है ।

और मैं, मेले में लुट गये बजारे-सा अपना सब कुछ खोकर लड़खड़ाते कदमों से बाहर आ जाता हूं ।

सभी का होता है। अगर हफ्ते भर के भीतर इसने पैसे नहीं दिये, तो मैं दूंगा बाकी रकम।" मैं मदनसिंह को इंगित कर कहता हूं।

और निगम का दोस्त सचमुच भी खिसा-खिसा सा हो जाता है— वह बिल्कुल अमर्यादित धरातल पर उतर आता है, "अब रहने भी दो यार, ऐसे ही काहे को अंधी बुहारी घुमा रहे हो? अपनी मक्खियां तो उड़ती नहीं, और दूसरे का आंगन बुहारने चले हो!"

"बस! उतर आये न अपनी पर? मगर, मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी।"

"बस, तो ठीक है न साहब, अब आप से कौन बहस बाजी करे? हम तो खुले मैदान कहते हैं, मर्जी आये, दूकान पर आये, हम कौन किसी सागे को बुलाने जाते हैं। मगर, अगले माह से हिसाब तो पूरा होगा ही। चाहे एक भी खानेदार रहे या न रहे।"

"चाहे वह तुम्हारा सगा भाई ही क्यों न हो?" यह कहना कैसे भूल गये? मैं कुछ सन्त्रस्त-सा होकर उसी क्षण रेस्तरां के बाहर आ गया। और वह इसान भी, जिसने केवल एक प्याले गर्म पानी की लाचारी में अपनी गैरत को खो दिया था।

मेरे भीतर एक अलग ही तरह का तूफान-सा घुमड़ रहा था। मैंने अब मदनसिंह को आड़े हाथों लिया, लानत है ऐसी चाय-वाय पर! इससे तो अच्छा है, आदमी भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर दम भले ही तोड़ दे, मगर इन उजले-उजले कपड़े वाले लोगों को, अपनी गरीबी की जीर्ण-शीर्ण चादर की पैबदों को उधेड़ने का अवसर नहीं दे। क्या जरूरी है कि तुम भी चाय पियो ही!"

मदनसिंह कुछ नहीं कहता, जैसे बुत हो गया हो। गर्दन नीची किए गड़े जा रहा है जमीन में। और मैं हूं जो, अब बाहर आकर बीच सड़क पर बड़बड़ाने लगता हूं। लो साहब हद हो गयी दोस्ताने की। कहने को बड़ा भाई समझते हैं, एक थाली में खाना खाते हैं। और फिर थोड़े से पैसों के पीछे अबे-तबे पर आते हैं।

मेरी बात सुनकर दो चार आते-जाते लोग रुक जाते हैं। लोगों के चेहरों पर सहानुभूति या समझने जैसा कोई संकेत नहीं है। फिर भी

मैं बदस्तूर बड़बड़ाये जा रहा हूं ।

लगभग महीने भर बाद दूकान पर जाता हूं, बचे हुए पैसे बिना कुछ कहे काउंटर पर रख देता हूं । आज भी वही नये महीने की तीन तारीख है। किशन के चेहरे पर दोस्त जैसी सहानुभूति, या अधिक दिनों बाद मिलने जैसी कोई जिज्ञासा नहीं है । वह सम्पूर्ण रूप से दूकानदार होकर पैसे उठा कर गल्ले में डाल लेता है । फिर वही बही खुल जाती है, जिसमें उधारी के धरातल पर मुझ और मदन जैसे अनगिनती लोगों का व्यक्तित्व लिखा जा चुका है ।

मैं देर तक खोयी-खोयी नजरों से अपने चिर-परिचित दोस्त को खोजने का असफल प्रयास कर रहा हूं—

तभी प्रकाश आकर मेरे गले में अपने नन्हे-नन्हे हाथ भुला देता है, "ताऊजी, ताऊजी ! बहुत दिनों बाद भी टॉफी नहीं खिलाओगे ?"

"जरूर खिलाएंगे बेटे !"

मेरे उठने से पूर्व ही किशन भूखे गिद्ध-सा आकर प्रकाश को अपनी ओर खींच लेता है । "प र का श' अक्षर, अक्षर जल उठा है उसके होठों से बाहर आने से ही पूरा शब्द बिखर गया है ।

और मैं, मेले में लुट गये बजारे-सा अपना सब कुछ खोकर लड़खड़ाते कदमों से बाहर आ जाता हूं ।

•

वह मेरा जन्मदाता

• भगवतीलाल शर्मा

मैं उसका नाम नही बताऊगा। नाम बताने से वह नाराज हो जायेगा। मैं नही चाहता कि वह नाराज हो जाय। दरअसल मैं उसे पाना चाहता हू—अधिक से अधिक पाना चाहता हू। वैसे वह मेरा दोस्त है। लेकिन मैं समझता हूं, वह मेरा दोस्त नही है। मेरी गर्दन पर आने वाले झटके को अपनी गर्दन पर झेलने वाले को यदि दोस्त कहते हैं तो सचमुच वह मेरा दोस्त है, वाकी मैं तो उसे अपना शरीर समझता हू। उसका और मेरा सम्बन्ध भी तो तन और मन की तरह है।

मैं उसे नही जानता था, नही इसलिये कि उस समय के पहले उसके साथ किसी तरह के सम्बन्ध नही बन पाये थे। मैं मकान के पिछवाड़े बैठकर बीडी पी रहा था कि वह आ गया। मैं डर गया और जब देखा वह मेरे जैसा ही छोटा लडका है तो मैं निडर हो गया लेकिन जब वह मेरी ओर मुस्कराकर देखने लगा तो मैं पुन डर गया। वह छोटा जरूर है, लेकिन उसने मेरी चोरी पकडी है और हो सकता है वह यह बात मेरे पिताजी को कह दे। मैंने उसको भी अपनी ओर मिलाना चाहा और उसकी ओर बीडी बढा दी।

"मैं नही पीता, तुम भी मत पीओ।"—उसने कहा।

मैंने कहा—"पीओ, पीओ; बेरो की चटनी से भी बढिया स्वाद है इसका।"

"ऊ हूं" बडे आदमी कहते है—बच्चों को बीडी नही पीनी चाहिए सो नही पीनी चाहिए।"

"बडे तो पीते हैं।"

"पीते होंगे। वे बड़े हैं, अपन तो बच्चे हैं।"

"तुम गधे हो। बड़ों की बातों में आ गये, मैं तो पीऊंगा।"

"मैं नहीं पीने दूंगा।"

"अच्छा!"

वह मेरी ओर बढ़ना चाहता था लेकिन नहीं बढ़ा। शायद उसने अपने और मेरे बल का अनुमान लगा लिया था। उस समय उसके मन में भयंकर पीड़ा थी, और आंखों में भारी रोष। वह चला गया और मेरे दिल में एक अज्ञात भय समा गया।

शाम आराम से गुजर गई। रात भी आई और निकल गई। मैं उस बात को भूल गया और मुझे फिर बीड़ी पीने की मन में आने लगी। पोल के बाहर पांच सात आदमी जमा थे, और मैं उन्हीं के बीच बैठकर ताप रहा था। सोच रहा था—यहां से भाग कैसे ले जाया जाय! तभी पिताजी लोटा मांजते हुए आ गये। उन्होंने आते ही मेरी टोपी उठादी। मैं कांप गया—सर्दी से नहीं डर से। उसी में तो मेरी बीड़ी पड़ी थी—एक पूरी और एक आधी। उनको बीड़ी मिल गई। मेरे सामने अंधेरा छा गया। मेरे पिता लम्बे होकर आसमान तक और चौड़े होकर दोनों दिशाओं तक फैल गये। मैं उनके पांवों में गेंद की तरह छोटी-सी गेंद की तरह लुढ़कने लगा। आज जब भी मैं बीड़ी पीने की बात याद करता हूं—मेरी कंपकंपी बंध जाती है। मैं उसी समय समझ गया कि यह काम किसका है! अगले दिन मैंने उसकी इतनी पिटाई की कि उसका सामने वाला दांत ही हिलने लगा। उस दिन डर के मारे मेरा और भी बुरा हाल था। लेकिन उसने यह बात किसी को न कही।

आज जब भी मैं बीड़ी का नाम सुनता हूं, बीड़ी को देखता हूं, वह याद आ जाता है, और मैं उसे इतना प्यार करने लगता हूं, जैसे वह मेरा जीव है, और मुझे विश्वास है वह भी मुझे अपना शरीर ही मानता है और मुझे यह भी विश्वास है वह [illegible] को अपना शरीर मानता है। और उसे इतना ही प्यार करता है जितना मुझे। मैंने उसे जानने की कभी हिम्मत नहीं की, जानना चाहता तो भी वह नहीं बताता कि उसने कैसी तरह कितने लोगों को बीड़ी पीने से बचाया है [illegible] जाने से बचाया है।

व्यक्ति की तारीफ करना आता है, लेकिन वह तारीफ अपना काम निकालने के लिए करता है। थोड़े में—उसे तारीफ नहीं चापलूसी करना आता है। जैसा मैं हूं, और यदि वह व्यक्ति मेरे जैसा ही है, तो मैं कह सकता हूं कि आदमी इतना इन्सान और शरीफ है कि कोई उसका मान उतार भी करे, या किसी में लाख गुण भी देखे, फिर भी उसे बिना मतलब इतना भी नहीं कहेगा कि तुम अच्छे हो। मैंने भी उसे यह नहीं कहा। इस डर से नहीं कि वह तारीफ पसन्द नहीं करता था तारीफ करने से बिगड़ उठेगा। इस डर से भी नहीं कि मुंह पर तारीफ करने से वह फूल जायगा और अपने बेहतरीन किस्मों के इन्सानी कामों को भूल जायगा बल्कि इसलिये कि उसकी तारीफ करने का अर्थ यह होगा कि मैं तारीफ के काबिल नहीं हूं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मैंने कभी उसकी बुराई की हो या चुगली की हो। इसका अर्थ सिर्फ यही हुआ कि मैंने उससे कभी प्यार नहीं किया, उसने मुझे प्यार किया और जिसका साफ अर्थ है—शरीर जीव को प्यार नहीं करता; जीव ही शरीर को प्यार करता है, और इसलिये वह मेरा जीव है, मेरी आत्मा है।

सौभाग्य से हम एक ही गांव में पैदा हुए और संयोग से एक ही पेशे में उम्र गुजार रहे हैं। प्रशिक्षण भी हमने एक साथ लिया। हम एक ही कमरे में थे। हमारा बिस्तर आमने सामने था। हम बिस्तर पर पड़े हुए थे। हाथों में किताबें थीं और दोनों चुप थे। चुप रहना नहीं चाहते थे पर सर पर जांच-परीक्षा आजाने से दोनों चुपचाप पढ़ने के लिए विवश हो गये थे। मेरे कानों में उसकी आवाज आयी पर उसने क्या कहा मैं नहीं सुन पाया।

"तुमने कुछ कहा ?"—मैंने पूछा।

"हां, क्या आपने नहीं सुना ? देखो, कितना उम्दा विचार है तुम्हारे पास दो कोट हों तो एक उसे दे दो, जिसके पास एक भी नहीं है।"

मैंने उसकी तरफ देखा। क्या वह नहीं पढ़ रहा था ? क्या पढ़ने का केवल ढोंग कर रहा था या केवल मेरे पढ़ने में सहयोग दे रहा था ? क्या उसे परीक्षा की चिंता नहीं और क्या वह अपने प्रति बिल्कुल चिंतित नहीं। मैंने उसे जब भी समझना चाहा, मेरे विवेक ने जवाब दिया—मैं उसे समझ गया हूं, और जब भी मुझे तसल्ली हो जाती है कि वह

कैसी स्पष्ट है इसकी बातें हैं, कैसा विवेक रखता है—मैं इसे नहीं समझ सका हूँ। क्या चक्कर है ! वह कैसा बना है। मेरे और उसमें कोई अन्तर भी तो नहीं। हम साधारण आदमी जैसा ही तो है वह ! फिर क्यों उसकी तरफ मैं जब देखता हूँ तो देखता ही रह जाता हूँ। उसके विषय में जब सोचता हूँ तो सोचता ही रह जाता हूँ। 'क्षमा करना मैंने आपको बाधा पहुँचाई।' वह बिस्तर पर लगभग बैठ गया। अब मैंने देखा उसके हाथ में कोई किताब नहीं, एक पत्रिका है। वह आगे बोला—ज़रा सोचिये साहिब, यदि ऐसा हो जाए तो गांधीजी का रामराज्य इतने नीचे लटकते हुए फल की तरह नहीं हो जाएगा, जिसे छोटे से छोटा आदमी भी आसानी से पकड़ सके।

"रहने दो फिर।"

"हां पढ़ो मगर पढ़कर क्या करोगे ! मेरी समझ में तो गांधी जी की बुनियादी शिक्षा का भी यह अर्थ नहीं है, जो हमें यहां सिखाया जा रहा है।"

मैं उसकी ओर देखने लगा कि वह क्या कहना चाहता है। वह कहने लगा—मैं नहीं सोच पा रहा हूँ पर जिनको भगवान ने दिमाग दिया है उनको सोचना चाहिए कि शिक्षकों को इस तरह ट्रेनिंग देने से उस शिक्षा का प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। गांधी जी सीधे और स्वच्छ शिक्षक चाहते थे। क्या हम यहां से वैसे ही बनकर निकलेंगे नहीं ना। तो फिर हमारे हाथों शिक्षार्थियों का बहुमुखी विकास कैसे होगा। हुई ना ट्रेनिंग बेकार।

"हां जरूर। अब पढ़ूं ?" जाहिर था मुझे उसकी ऐसी बेसिर-पैर की बातों से गुस्सा आने लगा था।

"चलो यार कुछ खायेंगे पीयेंगे।" कहने के साथ ही वह खड़ा हो गया। मेरी दृष्टि किताब में थी पर मुझे पूरा बस स्टेण्ड दिखाई देने लगा। फलों की लारी, मिठाई की दुकानें और वह होटल जिसमें हम अक्सर जाया करते थे। मैंने उसे कभी न्योता नहीं दिया। मुझे कभी ख्याल ही नहीं आया कि मेरी जेब में जो होटल के लिये निकले हुए पैसे हैं उसमें उसको भी साथ ले लूँ। मुझे याद है—एक बार किसी साथी से मुझे मालूम हुआ कि वह चौराहे पर मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मुझे भूख लगी थी और मैंने सोचा था, चौराहा की होटल में कुछ खा-पी लूंगा। जब मुझे उसके वहां होने के समाचार मिले तो मैंने तत्काल अपना विचार

बहुत बड़ा था और उसको निगलना तो दूर रहा, उसे साथ ले जाना भी नहीं चाहता।

मैं किनारा छोड़ खड़ा रहा था गड्ढे के लिये। लेकिन मारे का अन्त मुझसे ही मेरे हाथ से किताब गिर गई। एक भारी से उसने मेरे बहुत गाढ़ चाटे। आधा दर्जन केले लेकर हम बाग ओर गये। केले उसके हाथ में थे और मेरे थे। रास्ते में एकाएक गाय आ गई, वह कूद कर एक गया और वह खाता ही रहा। जब मैं उसके पास पहुंचा मैंने देखा—वह गाय के नीचे खड़ा है और एक एक कर चार केले गाय को खिला चुका है। मेरे दिल ने उम्मीद छोड़ दी। अब और न खिला दे, मैं भगवान से कहने लगा। जितने बचे उतने ही ठीक हैं। कम से कम दोनों को एक एक खाने को तो मिल जायेगा। उसने एक और केला गाय की तरफ बढ़ाया। मेरे पास भी बस न रहा। वह नहीं माना और शेष केले भी गाय के मुंह में डालकर उसे पुचकारने लगा। मुझे कितनी वेदना पहुंची वह नहीं जान सकता। और यह जानकर और भी अधिक वेदना पहुंची कि मैं अपना कष्ट उसे नहीं बता सकता। जब वह विजयी की तरह मेरी ओर देख रहा था। मैंने लाख चाहा कि मेरे मुंह पर खिन्नता न पड़े फिर भी पड़ गई और उसने चेहरे पर उभरती हुई क्षोभ की रेखाओं को ताड़ लिया।

"मुझे हैरानी है कि मैं ऐसा कैसे कर गया।"

मेरी नाराजगी प्रकट हो चुकी थी, जोकि नहीं होनी चाहिए थी। मुझे नाराज होने का अधिकार ही क्या था। मैं हसा लेकिन वह हसी फीकी थी और शर्मनाक भी थी—"तुम तो यहां खड़े होकर मेरा इन्तजार कर रहे थे कि गाय आयी। उसने केले सूघे और तुम्हारी तरफ देखा। तुमने उस दृष्टि से बचने के लिये उसको केले खिला दिये। तुम्हारी जगह कोई भी होता यही करता।"

वह हस दिया जैसे कृतज्ञता से हसा हो। मैं उससे दो किताब अधिक पढ़ा हूं, और ढेरों पुस्तकें भी चाट गया हू, पर क्या मैं उसकी बराबर पढ़ा हूं। जब भी मैं अपने से यह प्रश्न करता हूं—मैं गले तक भर जाता हूं। सच है आदमी कितना ही लिख पढ़ जाय पर जब तक वह जीवों में अपना जीव नही देखता तब तक वह मेरे हिसाब मे पढ़ा-लिखा कहलाकर भी पढ़ा लिखा नही हो सकता। आदमी नही कहला सकता। मैं भी आदमी नही हू। उसकी देखा-देखी आदमी बन सकता

है, लेकिन क्या औरों को, देखने सुनने और पढ़ने से कोई आदमी बन सकता है? आदमी बनने के लिए तो उसे कोट पहनने की बात का विचार छोड़कर कोट पहनने की बात पर विचार करना पड़ेगा। थोड़े से अपना ख्याल छोड़कर औरों का, जीव-मात्र का ख्याल करना पड़ेगा। मैं, जिसके अंत में कोट पहनने की बात जड़ जमा चुकी है, बिना उसको नष्ट किये आदमी कैसे बन सकता हूँ। मैं आदमी को देखकर कुढ़ता हूँ कि वह आदमी क्यों है, मेरे जैसा जानवर क्यों नहीं। मैं आदमी को देखकर उदारतापूर्वक खुश होता हूँ कि वह आदमी है, मेरे जैसा जानवर नहीं। लेकिन मैं अपनी जानवरता पर नहीं कुढ़ता, अपनी आदमीयता पर खुश नहीं होता, इसलिए मैं आदमी नहीं बन सकता।

रक्षाबन्धन पर हम दोनों घर जाने के लिए स्टेशन पर मिल गये। आगे एक साथी और मिल गया। मौज ही मौज में नदी के पास आये तब पता चला कि रास्ते में नदी है। नदी में पानी ज्यादा था। मेरी हिम्मत जवाब दे रही थी पर शर्मा-शर्मी में कह नहीं पा रहा था। उसने हिम्मत के साथ आगे बढ़ने के लिए कहा। तीसरे साथी ने विवशता बतायी और कहा कि उसके पास सवा सौ रुपया है और उसको अपने से अधिक उनका डर है।

"तुम्हारी जान माल की जुम्मेदारी मेरी, आओ।" वह आगे हो गया। हम हार कर उसके पीछे चल दिये।

तीन मील के चक्कर से बचने के लिये कितनी जोखिम उठा रहे हैं हम। मैंने सोचा शायद वह मान जाय और अब भी हम पुलिया पर चले जाय।

वह बोला—"कमाल है, हमको इतना [illegible] और डर किससे रहे हैं।" उसने कपड़े उतार कर सर पर बांध लिये। मैंने भी ऐसा ही किया। तीसरे मित्र के पास छतरी थी [illegible] उसने [illegible] उसमें भर लिये। तीनों पानी में उतरे। कुछ दूर गये कि हम डूब गये और हमें तैरने के लिये मजबूर होना पड़ा। [illegible] दी। हाथ खाली होने से हम तो निकल गये लेकिन [illegible] के हाथ में छतरी होने से वह बराबर तैर नहीं सका [illegible] वह [illegible]। मैं पानी से किस तरह निकला, मैं ही जानता हूँ और अब किसी भी कीमत पर पानी में नहीं जाना चाहता था। [illegible]

गले में उस मौत का महकता हुआ हार पहनने की हिम्मत शायद वह भी नहीं कर पा रहा था। लेकिन यह केवल मेरा वहम निकला। वह सर के कपड़े फेंक कर पानी में कूद पड़ा। जब वह उसके पास गया तो उसने चिल्लाना बन्द कर दिया था और वह छतरी छोड़कर आराम से तैरने लगा था। वे दोनों नई जिन्दगी मिलने की खुशी लेकर पानी से बाहर आये।

तीसरे दिन उसके पिता ने उसको अलग कर दिया। वह बेचारे भी कहाँ तक बर्दाश्त करते! चार साल से वह एक पैसा नहीं दे रहा है। मुफ्त की खाये जा रहा है बस। परसों शाम को वह पत्नी की बजटी टीकाकर सौ रुपये लाया। जाने क्या किया उसका। सट्टा खेलता है बदमाश। जुआरी कहीं का! अलग करो इसको। और कर दिया अलग।

"क्यों सच है क्या?" मैंने उसे पूछा।

"कैसी बात है।" हंस पड़ा वह। वह सदा हंसता ही रहता है। उसने बताया कि वह पैसा उसने उस दोस्त को दिया, जिसने उसके कहने से उस दिन नदी में पाँव रखा। मैं सर से पाँव तक चुप हो गया। मैं चलने लगा तो उसने चेतावनी दी कि यह बात किसी से नहीं कहना। मुझे स्वयं पर गर्व हुआ कि जिस बात को उसने सबसे छिपायी—अपनी पत्नी तक से, वह मुझे कही। वह मुझे कितना अपना समझता है – कितना नजदीक! वह मुझे बड़ा कहता है और मैं जानता हूँ वह कहता ही नहीं मेरी इज्जत भी करता है। और यह इज्जत मुझे इतनी प्यारी है कि मैं उसे सच भी नहीं कह सकता कि बड़ा मैं नहीं तुम हो। तुम मुझसे छोटे हो लेकिन बड़े हो। वही तो बड़ा है, जो जानना चाहिए वही जानता है और जो करना चाहिए वही करता है। जो अपना कोट उतारकर दूसरे के नंगे बदन पर डाल देता है वह चाहे बड़ा न हो, लेकिन जिसके पास कोट ही न हो वह कितने ही कष्ट उठाकर दूसरे के लिये कोट का प्रबन्ध कर देता हो वह जरूर बड़ा आदमी है और इसीलिये वह बड़ा है मुझसे हजारों, लाखों गुना बड़ा। अभी बादशाह खान आकर गये हैं। उन्होंने क्या नहीं बताया—जो जिसके लिये करता है, वह उसका बन जाता है। संसार के लिये जो करता है, संसार उसी का बन जाता है। जो अपने लिये करता है वह अपना ही बनता है, उसे कोई नहीं जानता, वह संकीर्ण बन जाता है, छोटा हो जाता है, होता जाता है। जो सबके लिये करता है, वह सबका बन जाता है, उसे सब जानते हैं, वह व्यापक

बन जाता है, बड़ा हो जाता है। बड़ा होना मैं जानता हूँ। लेकिन मैं बड़ा नहीं हो सकता। क्यों ? मैं नहीं जानता। मैं बड़ा नहीं हो सकता, मैं उसके जैसा नहीं हो सकता बस इतना जानता हूँ मैं। अच्छी आदतें अच्छी लगती हैं, फिर भी बुरी आदतें ही बनी रहती हैं। कारण कि मुझे दूसरों की आदतों से ही मतलब है, अपनी आदतों से नहीं। इसलिए मुझ में उसकी आदतें—अच्छी आदतें नहीं आ सकती।

जब हम घर से चले थे, उसने कहा था—सुबह भी रोटी नहीं बनी। एक रुपया है जेब में ? आटा लाना है। लेकिन मुझसे यह कहते नहीं बना कि मैं आटा दे दूंगा। मुझे क्यों गैर समझते हो, मेरे यहां से आटा क्यों नहीं मंगा लिया ? शायद यह मेरी अहम् भावना ही थी कि मैं उसे तब दूं जब वह मुझसे मांगे और शायद वह यह सोचकर न मांगता था कि मैं अपने लिये इसे क्यों तकलीफ दूं। न वह मुझसे मांगता था न मैं उसे दे पाता था। रास्ते में हमने एक सेब की लारी को घेरे आठ दस स्कूली बच्चों को खड़े देखा। वह दृश्य ऐसा था कि हम भी वहां खड़े हो गये। एक बच्चा सेब खा रहा था और शेष उसकी ओर देखने लगे। न उन्हें सेब मिली और न उन्होंने उसे देखना बंद किया। "ए भैया, सबको दे दस दस पैसे की।"

मैं उसके मुंह की ओर देखने लग गया। अच्छा हुआ कि उसने मेरी ओर नहीं देखा वरना जाने क्या समझता। सेब के पैसे देने के बाद दस पैसे उसके पास बच थे। उनका वह क्या आटा ले जायगा और क्या घर वालों को खिलायगा ! मैंने आटे का जिक्र ही नहीं किया।

बाजार में वह जाने किधर निकल गया। बड़ी तलाश की उसकी। आखिर न मिला तो हारकर अकेले को ही घर का रास्ता पकड़ना पड़ा। उसकी तलाश और इन्तजार में जहां सात बजे घर लौट आने की बात थी वहां नौ बजे घर आया। रोटी रखकर वह बोली—"अच्छा दोस्त है तुम्हारा ! तीन आदमी का पेट नहीं भर सकता। उधर वो मौज शौक करता फिरता है उधर उसकी औरत घर-घर आटा मांगती फिरती है।"

"तुम्हें क्या मालूम ?"

"यहां आयी थी लेने।"

"तुमने दे दिया ?"

"दे नहीं दिया जब।"

भीतर कुछ गड़बड़ हुई ऐसे जैसे बिना पूछे पत्नी ने जेब से पैसे निकालकर बाजार जैसी फालतू चीज खरीद ली हो। अपनी चीज देने में कितना दुःख होता है। इसका अन्दाज आज पहली बार लगा। दुःख होना वाजिब भी है। मुश्किल से आती है हर चीज और यों मुफ्त में चली जाती है तो दिल दुखता है। वो धन्य है, जो अपनी चीजें आसानी से दे देते हैं। मेरा दोस्त भी धन्य है। अब मुझे पूरी तरह समझ में आया कि उसे वह कोट वाला विचार अच्छा क्यों लगा। दो कोट हों तो एक दे दो और इस देने में दिल दुखता है तो मत बनवाओ। संग्रह मत करो। मैं दो कोट बनवा लेता हूँ तो उनमें एक कोट दूसरे के हिस्से का होता है। दूसरे के हिस्से की वस्तु लेना चोरी कहलाती है। मैं न बनवाऊं तो मैं चोरी करने से बचता हूँ और देने का कष्ट भी नहीं भोगना पड़ता है। मुझे इस बात की खुशी होने लगी कि वह धीरे-धीरे मेरी समझ में आ रहा है।

अगले दिन सुबह वह मुझे सौदा लेकर जाते हुए मिल गया। उसने अभिवादन किया। लेकिन मुझे उसको देखते ही कल वाली लापरवाही याद आ गई और बिना उसके अभिवादन का उत्तर दिये उसे दबाने, अधिक झुकाने और परेशान करने के लिए अवसर का पूरा लाभ उठाते हुए कहा—"तो साथ वाले को इस तरह धोखा दिया जाता है।"

"जी ... नहीं मालिक यह बात नहीं है, बिल्कुल नहीं है। बहुत बुरी तरह फंस गया हूं मैं। बुरा काम हो गया है मुझसे।" एक ही सांस में बोल गया वह। मैं उसके शब्दों में कल की घटना को और उसे लेकर उसको परेशान करने के भाव को एक ही सेकण्ड में भूल गया। उससे क्या बुरा काम हो सकता है, इसकी मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता। जैसे मुझ जैसा आदमी अच्छाई में भी बुराई ग्रहण करता है, वैसे ही उस जैसा आदमी बुराई से अच्छाई ग्रहण करता है, ऐसा आदमी चाहे कर बुरा काम भी करेगा तो भी उससे अच्छा ही होगा। जिस समय मैं यह सोच रहा था, भीतर भाव उठ रहे थे—यह मेरे लिये कितनी अच्छी बात होगी कि यह बुराई में फंस गया हो और मेरे ही जैसा हो गया हो। लेकिन इसके बाद जो बात बताई उसने मेरी सारी आशा मिट्टी में मिल गई। [illegible] उसने सदर पर एक बालक को बाजार में कपड़े के जूते पहनाते

ले गया। जैसा कि होता है अन्य बालक भीड़ उसके साथ हो गये। एक बालक जूते पहन कर पांवों को देखे और अन्य बालक उसके भरे और अपने नंगे पांवों को देखें, उसके राज्य में ऐसा कैसे हो सकता है ! उसने सबको जूते पहना दिये और यही नहीं मोजे भी दिलवा दिये। पैसे थे नहीं सो दिये नहीं और अभी तक नहीं दिये। बहुत छिपता फिरा। अन्त तो दुकानदार ने पकड़ ही लिया और दुकान पर ले गया। ले जाकर पैंसठ रुपये के दुगने का खत लिखवा लिया। शर्त थी कि यदि एक सप्ताह में पैसे दे दिये तो पैंसठ रुपये वरना तो दुगने रुपये वसूल हो जायेंगे। तो यह हुआ उससे बुरा काम। क्यों पहनाये उसने जूते। खाने को दाना नहीं और नगर न्योत दे, फिर तो जो हालत हो थोड़ी है। भुगते अपने कर्मों के फल।

मैं कभी न पिघलने वाली चीज का बना हुआ इन्सान हूं। मेरे आगे रोने वाला निश्चय ही अपनी आंखें खोयेगा। मैंने कभी पराये दुःख का अनुभव नहीं किया। पत्नी सर की पीड़ा के मारे रात भर दीवार पर सर पटकती रही और मैं आराम से सोया रहा। लेकिन उस दिन मेरे भीतर हलचल मच गई, भारी तूफान आ गया। मैं सोच नहीं पा रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है, मुझे क्या हो गया है। आखिर शाम तक चैन न मिली तो ऐसे ही दिल बहलाने के लिए अकेला बाजार की तरफ निकल पड़ा और ऐसे ही उसका हिसाब देखने दुकान पर चढ़ गया। पैसे दिये और रसीद ली। मुझे विश्वास नहीं हुआ कि यह काम मेरे—मुझ जैसे आदमी ने किया। मैं ऐसा कभी नहीं हूं मैं ऐसा कभी नहीं रहा। मेरी आंखों में आंसू आ गये—क्या सचमुच मैं ऐसा हो गया हूं—हे ईश्वर। मुझे रोना आ गया। और यदि सचमुच मैं ऐसा हो गया हूं तो मानो मेरा जन्म हुआ है, हां मेरा जन्म ही तो। और इसका श्रेय उसको है [illegible] उसको। वही मेरा जन्मदाता है। जिसकी आंखें दूसरे के [illegible] रोती नहीं होती, जिसका दिल दूसरे की [illegible] नहीं [illegible] सी है। अब मैं समझा कि [illegible] के [illegible] चाहिए।

[illegible]

भी नही ला सकता। सच्चे आदमी से गलत काम हो ही नही सकता। लेकिन मैं नही कह पा रहा हूं। भाई साहब को इसका यह अर्थ नही लगा लेना चाहिए कि मैं हमेशा इसी तरह असत्य से दबता रहूंगा। मुझे प्रकाश मिल रहा है, इसलिये मुझे बल भी मिलेगा, और तब असत्य के आगे घुटने टेकने वाला मैं असत्य के आगे ताल ठोक कर खडा हो जाऊगा। आज तो मैं इतना ही कह सकता हू—वह मुझे नही छोड़ेगा—किसी कीमत पर नही छोडेगा। क्या जीवित रहते कोई मन अपने तन को छोड सकता है! वह सब पर अपनी जान छिडकता है। सब उसके शरीर हैं। वह मुझे ही नहीं किसी और को भी नही छोड सकता।

भारतीय संस्कृति में कर्म साधना

• डॉ० रामगोपाल गोयल

"तमसो मा ज्योतिर्गमय।" भारतीय संस्कृति का अर्थ है अन्धकार पर प्रकाश की जय, मौत पर जीवन की विजय। इस जय-विजय के पावन संगम पर भारतीय संस्कृति के अक्षय वट का निर्माण हुआ है। संस्कृति का अर्थ है संस्कार करना अर्थात् परिमार्जन करना, विकास करना। संस्कृति हमारे प्रकृतिजन्य संस्कारों का संस्कार करती है। जीवन की तीन अवस्थाएं होती हैं— प्रकृति, विकृति और संस्कृति। मनुष्य के समस्त कार्य-कलापों का उद्गम-स्थल उसकी स्वाभाविक प्रेरणा है, प्रकृति है।

अमुक काम कर अमुक मत कर यह सब प्रेरणा है। पाश्चात्य दर्शनशास्त्री हॉब्स के अनुसार भी आचरण प्रत्येक आदमी की स्वाभाविक प्रेरणा का परिणाम है। ऐहिक सुखों की स्पृहा प्राकृतिक है। दुःखा दुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम् (शान्ति पर्व)। सभी मनुष्यों को दुख से घृणा तथा सुख की इच्छा रहती है। जब हमारी भावना यह होती है कि हम जियें पर दूसरे भी जियें। हमारा सुख दूसरों के लिए दुख का कारण न बने। अपना जीवन अपने तक ही सीमित नहीं है, दूसरों को भी देखना है या फिर अपने लिए ही दूसरों को जीने देना है, यह अवस्था प्रकृति कहलाती है। जब हमारे सुख की नींव दूसरों के उत्पीड़न शोषण और विनाश पर आधारित होती है तब यह अवस्था विकृति कहलाती है। हमारा वर्तमान समाज इस विकृत अवस्था का जीवित उदाहरण है। हमारे यह भव्य रंगमहल हमारे ही बन्धुजनों की कब्रों पर आधारित हैं। यह विकृति की पराकाष्ठा है, किन्तु जब हमारे मन में वह उच्चवृत्ति उदय [illegible] हम दूसरों के सुख के लिए अपने सुख का त्याग करें, हम जिए

किन्तु केवल अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जियें, हमारे मरण की सेज पर नवीन जीवन का अभ्युदय हो तब यह अवस्था संस्कृति कहलाती है। प्रकृति से विकृति की ओर जाना मृत्योन्मुखी जीवन का लक्षण है और प्रकृति से सस्कृति की ओर जाना मुस्कराती जिन्दगी का अभिषेक करना है। भारतीय सस्कृति इस मुस्कराती हुई जिन्दगी का अभिषेक करने वाली है। भारतीय सस्कृति का अर्थ है शान्त से अनन्त की ओर अभियान, भेद मे अभेद की अनुभूति, विरोध मे विवेक का प्रतिष्ठापन। भारतीय सस्कृति का कार्य है—कर्म, भक्ति और ज्ञान का समन्वय और इसका लक्ष्य है—पूर्ण जीवन की प्राप्ति—'ओउम् पूर्ण मद' पूर्णामिद पूर्णात पूर्वमुदुच्यते।"

मनुष्य जीवन की यह पूर्णता कैसे प्राप्त की जा सकती है? इस प्रश्न का उत्तर हमे श्री मद् भगवत् गीता से प्राप्त होता है। गीता समन्वय की एक विराट् चेष्टा है। कर्म, भक्ति, और ज्ञान इन तीनों के समन्वय मे ही मनुष्य जीवन की पूर्णता निहित है। कर्म के बिना ज्ञान पगु है, ज्ञान के बिना कर्म अन्धा है। भक्ति कर्म को कमनीय और ज्ञान को रमणीय बनाती है। बिना आस्था के किया हुआ कर्म केवल छलना है और ज्ञान केवल पाखण्ड। सत्य के साथ जब सुन्दरम् मिल जाता है तो सत्य शिवम् बन जाता है। कर्मचक्र के साथ जब मुरली का मधुरिमा गूंजने लगती है तो कर्मचक्र सुदर्शन बन जाता है। लोक-संग्रहार्थ ज्ञान विज्ञान युक्त श्रद्धा-जनित कर्म को ही गीता मे निष्काम कर्म की सज्ञा दी गई है। गीता का यह निष्काम कर्म ही मनुष्य जीवन की पूर्णता का मार्ग है।

हमारे श्रम की बून्दो से मा वसुन्धरा का शृंगार हो, यही अभीष्ट है।

आज हमारे समाज की बड़ी दयनीय और विषम अवस्था है। एक ओर तो परिश्रम से बचने वालो का वर्ग बना हुआ है, दूसरी ओर परिश्रम के अतिशय भार से मरने वालों का। परिश्रम से कतराने वाला वर्ग, गरीब श्रमिक वर्ग के कन्धों पर लदा हुआ है और उनके उत्पीड़न का कारण बना हुआ है। दूसरी ओर श्रमिक वर्ग भी श्रम के अतिशय बोझ से दबे हुए हैं, वे अपने कार्य मे आनन्द का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। श्रम विभाग की यह अमनोवैज्ञानिक प्रणाली आज हमारे समाज के लिए अनर्थकारी बनी हुई है। इसलिए केवल बौद्धिक श्रम की दुहाई देकर मनुष्यता के लिए भार बने हुए जुआखोरों से वेद भगवान् स्पष्ट रूप से कह रहा है—'अक्षैर्मादीव्य. कृषिमित कृषस्व' अर्थात् पासों से जुआ मत खेलो, खेती करो।' राजा जनक ने हल चला कर कर्मयोगी की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। रघुवंशियों ने गो-पालन का कार्य किया था। राजा दिलीप ने कामधेनु की रक्षार्थ अपने को सिंह के लिए अर्पित कर दिया था। श्रीकृष्ण ने गायें चराई थीं, आगन लीपा था, जूठी पत्तलें उठाई थी और अर्जुन का रथ हाका था। उपनिषदों से ज्ञात होता है कि उपकोशल आदि शिष्यों ने कर्म के द्वारा ही ब्रह्म ज्ञान की उपलब्धि की थीं। आज हमारे समाज की यह अवस्था है कि उत्पादक कार्य और उसके करने वालो को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। किन्तु हमारी सस्कृति तो बतलाती है कि समाज सेवा का कोई भी कार्य किसी भाति से नीच नही होता। धन्ना-जाट खेती करता था, गोरा कुम्हार मटके बनाता था। अज्ञात कुलशील कबीर जुलाहे का काम करता था, रैदास जूते गाठता था, सेन हजामत बनाता था। फिर भी यह सब सन्त थे। स्वय वेद भगवान् ने इस कोटि के समाज-सेवकों की उन्मुक्त कण्ठ से वन्दना की है—"चर्म कारेभ्यो नमो, रथ कारभ्यो नमो, कुलालेभ्यो नमो।" समाज की कर्ममय पूजा करने वाले ये सारे श्रम-जीवी उस महान् ऋषि को वन्दनीय प्रतीत होते थे।

हिडिम्बा काव्य : एक विवेचन

• डॉ० राधेश्याम गुप्त

गुप्त जी की यह रचना उनके दार्शनिक दृष्टिकोण को अपने मे संजोये हुए है। इस काव्य की कथा का आधार महाभारत की एक घटना है।

"लाक्षागृह से बचे हुए पांडव जब वन मे विचरते हैं तो भीम का परिचय हिडिम्बा से हो जाता है, यही घटना इस काव्य का मूलाधार है।"

गुप्त जी ने अपनी प्रतिभा एव भारतीय सस्कारों से प्रभावित होने के कारण इसमे कही-कही सशोधन एव परिवर्द्धन भी कर दिया है। महाभारत की हिडिम्बा एक दानवी है, जबकि इस खडकाव्य की हिडिम्बा एक मानवी बन गई है। कवि ने इस खडकाव्य मे स्थान-स्थान पर कुन्ती एव हिडिम्बा के सम्वादों के माध्यम से नर-राक्षस, आर्य-अनार्य, प्रेम-त्याग और नारीत्व पर प्रकाश डाला है। यही कारण है जिसके कारण कवि को हिडिम्बा के चरित्र चित्रण मे सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को सक्रिय रखना पडा है। नारीत्व की रेखाओ को उभारने के कारण वीर रस की पृष्ठभूमि पर शृंगार रस खूब निखर उठा है। अतः यह कहा जा सकता है कि काव्य मे हिडिम्बा के नारीत्व की आदर्शवादी परिणति गुप्त जी के सवेदनापूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण की परिचायिका है। इस काव्य में ऐसा प्रतीत होता है कि कवि साध्य, 'वर्ग चेतना के परित्याग की भावना को जागृत करना' है।

महाभारत की कथा मे कवि ने अपनी शैली व दृष्टिकोण से परिवर्तन कर इस खडकाव्य की कथा का निर्माण किया है। उदाहरणार्थ कुछ स्थल यहा दिये जा रहे हैं।

महाभारत की हिडिम्बा अपने भाई को पाण्डवों को मारने के लिये आते हुए देख कर उसे अपशब्द कहना प्रारम्भ कर देती है—

"आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः ।"[1]

चाहे मनुष्य हो अथवा राक्षस, प्राय कोई भी अपने सहोदर के लिये ऐसे शब्द प्रयोग नहीं करेगा और नहीं करना ही समुचित है।

ये शब्द श्रोता को बड़े ही अनुचित एवं अस्वाभाविक से प्रतीत होते हैं। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को दृष्टिगत रखते हुये गुप्त जी स्वयं हिडिम्बा के आगमन का वर्णन कर देते हैं—

"आ गया इसी क्षण हिडिम्ब यमदूत सा,
भीरुओं की कल्पना का सच्चा भयभूत सा ॥"

महाभारत की हिडिम्बा कुछ अधिक वाचाल है। इसीलिये भीम को काम-पीड़ा की दुहाई देने में नहीं लजाती।

"आर्ये जानासि यद् दुःखमिह स्त्रीणामनङ्गजम्।
तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥

× × ×

प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।"[2]

महाभारतकार की अपेक्षा गुप्त जी की रुचि अधिक परिष्कृत है, उन्हें कुछ लोकलाज का भी भय है, साथ ही नारी जाति के प्रति वे श्रद्धालु भी सदैव से रहे हैं, इस कारण वे इस बात को परिष्कृत कर अपने ही ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

"किन्तु मेरे भी हृदय है,
औरों का नहीं तो मुझे अपना ही भय है।
न्याय से तुम्हीं पर न भार मेरा भारी है।
रक्षक जिन्होंने रख सब मेरा मारा है।"

दूसरे पुरुष पात्र हैं—भीम, जिनके महाभारत के [illegible] चरित्र में गुप्त जी ने यथासम्भव परिवर्तन कर दिया है। महाभारत के भीम इतने अधिक दर्प से चूर हैं कि इनका मर्यादापूर्ण व्यवहार [illegible] परिस्थिति

---

१ महाभारत—आदि पर्व : अध्याय १५३ (श्लोक ४)
२ महाभारत—आदि पर्व : अध्याय १५५ (श्लोक ८-९)

काव्य विश्लेषण—कवि ने जो स्थान-स्थान पर नवीन प्रयोगों व विचारों का समावेश किया है उनका संक्षेप में यहां उल्लेख किया जा रहा है, जिससे कि काव्य की सम्पूर्ण आलोचना प्रस्तुत करने में विज्ञ पाठकों एवं विद्यार्थियों को सहायता मिल सके तथा कवि की काव्यगत विशेषताएं भी पाठकों के समक्ष स्वत: ही उभर आयें।

हिडिम्बा काव्य में चित्रांकन शैली बिम्ब एवं प्रतीक योजना के स्थलों को स्थान दिया गया है। इससे भाषा ओज और माधुर्य गुणों में स्वयमेव ही युक्त हो गई है। मुहावरों व कहावतों का प्रयोग तो स्वतः ही हो गया है। काव्य में घनाक्षरी, उत्तराचरणार्द्ध छंद का प्रयोग किया गया है। उद्दीपन के रूप में प्रकृति का वर्णन है—

> "दीख पड़ी सुन्दरी समक्ष एक उनको,
> उदित वसुन्धरा में रत्नों की शलाका थी,
> किंवा अवतीर्ण हुई भूमि में राका थी।।"

संवेदनीयता कवि का एक आवश्यक गुण होना है जिसके माध्यम से वह अपने भावों, अनुभवों एवं अन्य अनुभूत सत्यों को संवेद्य बनाकर पाठकों तक पहुंचाता है और पाठक को यह भान होने लगता है कि वह काव्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर मधुमती भूमिका में विचरण कर रहा है। गुप्त जी में भी यही विशेषता लक्षित होती है। वे मानवीय व्यापार का आश्रय लेकर अनुभव प्रेषण का प्रयत्न करते हुए एक स्थान पर लिखते हैं—

> "फूल-कांटे एक से हुए होंगे विधि के
> पार्षद बने थे, निज जीवन के निधि के।"

इस संवेदनीयता के साथ कवि में कल्पना और अप्रस्तुत-विधान का समायोग भी दृष्टिगत होता है जो काव्य के कला-पक्ष को और भी उभार देता है यथा—

> 'आ गया इसी क्षण हिडिम्ब यमदूत-सा,
> भीरुओं की कल्पना का सच्चा अद्भुत-सा।"

यहां अप्रस्तुत विधान के माध्यम से कवि ने यमदूत का भीषण कराल रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। यहां पाठकों को भीरु माना गया है और एक भीरु व्यक्ति में जितनी आशंकाएँ अकस्मात् घर होती हैं, उसी प्रकार की कल्पना हिडिम्ब के आने पर पाठकों के मन में उत्पन्न कराने का ध्येय कवि का रहा है। यहां स्पष्ट ही यमदूत स्वयं हिडिम्ब के उपमान

बन गये हैं।

गुप्त जी ने चमत्कार उत्पन्न करने के लिये गंभाव्य को असंभावित उपस्थिति का भी आश्रय लिया है। भीम और हिडिम्बा जब परस्पर प्रेमालाप में मग्न हैं उस समय कवि हिडिम्बा द्वारा कहलवाता है कि राक्षस हिडिम्ब तो मेरा भाई है और उसी ने मनुष्य की गंध पाकर मुझे भेजा है, तो पाठक सहसा चौंक उठता है। यही कारण है कि काव्य का यह रूप अपने पूर्व रूप (महाभारत में वर्णित) से अधिक रोचक बन गया है। गुप्त जी ने प्राचीन चरित्रों का पुनरस्पर्श कर उनकी पुनरसर्जना की है, जिसमें वह पूर्णतः सफल हुए हैं, इस प्रक्रिया को नव निर्माण किसी भी रूप में नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि कुछ आलोचक कहने का दुस्साहस करते हैं क्योंकि भीम और हिडिम्बा के चरित्र इसके उदाहरण हैं।

गुप्त जी ने अनेक वर्णों की संश्लिष्ट और सूक्ष्म योजना का भी आश्रय अपने काव्य में लिया है, जिसके उदाहरणस्वरूप हिडिम्बा का चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है—

"उदित वसुन्धरा से रत्नों की शलाका थी,
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमती राका थी,
अग मानो फूल, कच भृंग हरी शाटिका,
प्रेम मुस्कान बन ओठों पर आई थी।
सुरभि-तरंग वायुमंडल में छाई थी॥"

यही पंक्तियां कवि की अलंकारप्रियता का भी संकेत अनायास ही दे जाती हैं, जो अपने आप में आरोपमूलक अलंकारों का एक सुन्दर उदाहरण है।

गुप्त जी ने शिष्टाचार एवं भारतीय हिन्दू धर्म का भी यथावत् पालन किया है। भीम जब हिडिम्बा को देखते हैं तो उसे 'राक्षसी' शब्दों से सम्बोधित न करके 'देवी' शब्दों से सम्बोधित करते हैं—

"देवी, कौन है तू यहां?"

आह्वान अथवा अतिथि-सत्कार भारतीयों की एक विशेषता है। हिडिम्बा भी उसी परम्परा का पालन करती हुई कहती है—

"अपने अतिथि का मुझी पर न भार है,
कह दो अपेक्षित तुम्हें क्या उपहार है?"

योग की झलक भी गुप्त जी के काव्य पर पड़े बिना नहीं रह सकी है। यथा—

"मानुषानी हूं न, योग रजनी हूं माया का।"

आज के युग को प्राचीन कर्मकाण्ड अथवा शुभा-शुभ विचार भी मान्य नहीं है। यह दृष्टिकोण गुप्त जी के काव्य को भी कहीं-कहीं स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है। वे उसे एक जालमात्र ही स्वीकार करते हैं—

"कोरा कर्म-काड जाल जकड़े हैं जन को,
शुरू पकड़े है, नाति घकड़े है, जन को॥"

इतना सब कुछ होते हुए भी कवि का मानवीयतावादी दृष्टिकोण कहीं छिपता नहीं है। गुप्त जी ने हिडिम्बा राक्षसी में स्त्री-सुलभ लज्जा का समावेश कर, इस काव्य में मानवीयता का आदर्श ही प्रस्तुत नहीं किया है, वरन् वर्ग भावना को त्याग कर जीवमात्र से प्रेम करने का संदेश भी दिया है। यही गुप्त जी का इष्ट भी प्रतीत होता है।

मंत्र सिद्धि

• डॉ० शिवकुमार शर्मा

जीवन में अनेक बातें इस प्रकार सामने आती हैं कि उनका पिछली बातो से बडा सुन्दर मेल बैठता है। पिछली बातो का वर्तमान से मेल बैठते हुए कभी-कभी तो उनका इतना विस्तृत और गहन मेल बैठता है कि मन मे वे बातें एव मत्र दुहराये जाते है। जीवन मे ज्यो-ज्यो आगे बढते हैं उनकी सचाई और सार्थकता का रग अधिकाधिक गहन होता जाता है।

उस बचपन की बात है जिसकी अब धुंधली-सी याद रह गई है। अपने से ही छोटे-छोटे मित्रो के साथ घर से ज्योही मौका मिला कि खेलने के लिए खिसक जाना दिनचर्या का एक प्रमुख अंग था। उस जीवन के अनेक काल्पनिक मत्रो के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण मत्र यह था कि अगर ससार में, जो चाहो करना चाहते हो, सफलता चेरी बनकर पीछे-पीछे फिरती रहे तो उसका एक ही साधन है वह यह कि एक मत्र सिद्ध करना पडेगा। इस मन्त्र को साधारण इन्सान नही जानते वरन जादूगर लोग ही जानते हैं। इस मन्त्र को सिद्ध कर लो फिर जो चाहो सो करो। एक रुपये की मदद से रुपयो के ढेर कर लो और तो और दूसरो को वश मे कर लो और फिर उनसे इच्छानुसार काम लो। इन सबका एक ही साधन है एक मन्त्र सिद्ध करना।

इस मन्त्र को सिद्ध करना कोई साधारण काम नहीं। फिर भी यह मन्त्र सिद्ध किया जाता है। जादूगर लोग तो इसको सिद्ध करते ही हैं। वे इस मन्त्र को श्मशान मे सिद्ध करते हैं। वे एक दिन श्मशान मे जाते है, रात को जाते हैं। उस रात को जिसे काली रात कहते हैं। ऐसी

काली रात कि घोर तो घोर मगर दायें हाथ को बायां हाथ भी न देख सके।

ऐसी रात में वे वहां जाकर आसन जमाते हैं। आस-पास एक गोलाकार लीक बना लेते हैं। यह लीक ऐसी होती है कि इसके बीच में बैठे रहने पर कोई भी उनका कुछ नहीं बिगाड सकता क्योंकि इस लीक को पार कर आने की जगने वालों में हिम्मत नहीं होती। अगर कोई हिम्मत करे तो उसका काम तमाम हो जाता है। वह जादू की लीक होती है।

उसी गोलाकार लीक के मध्य में बैठ कर जादूगर मन्त्र का जाप शुरू करता है। जाप करते-करते श्मशान जाग उठता है। आत्मायें चारो ओर से आने लगती हैं। यह मन्त्र सिद्धि के खतरे से भरे हुए क्षणों का प्रारम्भ है। प्रत्येक आत्मा का अपना-अपना एक-एक सवाल होता है।

"मुझे ताजी और गरम जलेबी चाहिये"
"मेरी कलाकन्द खाने की इच्छा है"
"मेरी प्याज की पकौडी की फ़रमाइश है"
"मैं बकरे की मुन्डी खाऊंगा"
"मेरा शराब पीने का इरादा है"
"मुझे केवडे का इत्र दो"
"मेरे लिए गुलाब के फूल लाओ"
"मेरी पसंद है मस्त बनाने वाली विजया"
"मेरा इन्सान के ताजा खून का सवाल है"

प्रत्येक आत्मा की इन जरूरतो को, इच्छाओ को, इरादो को और सवालो को जादूगर को पूरा करना पडता है। अगर एक को भी ना करना पडे तो मंत्र सिद्धि में बाधा आती है। जादूगर को प्राणो तक के लाले पड सकते हैं। मगर इस मन्त्र को जो सिद्ध कर पाता है, संसार की सफलतायें उसके पावो तले लोटने लगती हैं। कौन-सा ऐसा काम रह जाता है जो वह न कर सके ?

बचपन में इस मन्त्र की हम लोग साथ बैठकर चर्चा करते थे। आज यह तो याद न रहा कि सर्व प्रथम इसे किसने किस बालक को कहा था। परन्तु इसकी कल्पना के जगत में विचरण करते समय उस क्षण मुझे

बड़ा आनन्दानुभव होता था जब मैं स्वयं उस जादूगर का 'रोल' अदा करता जिसने सफलता के साथ श्मशान जगा लिया था, जो सिद्ध पुरुष था, और फिर कल्पना की मिठाइयों का ढेर, वस्त्रों से भरे हुए भंडार, सात मंजिला महल और आज्ञाकारी सेवकों के झुंड, मेरी आज्ञा को मानने को हर समय उद्यत। और ऐसे ही क्षणों में आत्मा का मुझे पुकारना। बार-बार पुकारना। न सुनने पर उसकी ओर की डांट। सारे आनन्द का किरकिरा होना और फिर ऐसा लगना मानो मैं यकायक स्वर्ग से इस जमीन पर धड़ाके के साथ गिरा दिया गया हूं।

कल्पना जगत में जीने का बचपन गुजर गया। उन सब मित्रों के सर के बाल अब तक पक चुके है। आंखों पर चश्मा लगता है। मुंह पर झुरियां पड़ गई है। शाम सवेरे खों-खों करते हैं। पीकदान के बिना काम नहीं चलता। आज वे और हम, सभी कल्पना के संसार के बजाय साकार संसार में जी रहे हैं। पहले की तुलना में जानकारी का दायरा बहुत बढ़ गया है।

परन्तु आज भी बचपन का वह पुराना मन्त्र मन में आने वाले विचारों के तूफान के एक तीव्र झकोर की तरह बार बार जबान पर आकर रुक जाता है और कभी-कभी आज के जीवन के अंतरंग मित्रों के सामने व्यक्त हुए बिना भी नहीं रह पाता है।

एक सवेरे जल्दी-जल्दी तैयार होकर शहर जाने के लिए बस स्टेंड को रवाना होने को ही था कि मुन्नी कॉपी और किताब लिए सामने आई—

'एक सवाल है बाबूजी !' मुन्नी ने कहा।

'कैसा सवाल है ? सवेरे ही सवेरे कहीं एक पैसा और पाव भर आटे के किसी फकीर, के सवाल जैसा तो तुम्हारा सवाल नहीं है मुन्नी बेटी ?' मैंने मुस्कराते हुए कहा।

'नहीं नहीं। वैसा सवाल मेरा काहे को हो ? गणित का एक सवाल है। तीन बार किया फिर भी नहीं आया।'

'देखो कहीं मैं बस नहीं चूक जाऊं ?'

यह कह कर मैं प्रश्न करने बैठ गया। सवाल पूरा हुआ। उत्तर

को मिला ही चुका था कि बेबी ने मुस्कराते हुए कहा—'बाबूजी ! मेरे मास्टर साहब ने कहा है - अरे भाई ! अब तो ट्यूशन के रुपये लाओ। पन्द्रह तारीख हो रही है।'

जेब से रुपये निकाल कर बेबी को हाथ में दिये और जूते के फीते कसने लगा।

'देखिये सर्राफ के नेकलेस के रुपये भी चुकाते आना वर्ना अगली बार वह उधार नहीं देगा।' बेबी की अम्मा ने आगाह करते हुए कहा।

'हां हां तुम निश्चिंत रहो।'

फीते कस कर बाहर निकलने को ही था कि अम्मा ने कहा—"मैंने कार्तिक स्नान किये हैं, ब्रह्म भोज करना है। परसों सवेरे का ही मुहूर्त है। परसों सवेरे तो आ जाओगे न बेटा ?"

'हां हां जरूर आ जाऊंगा अम्मा।'

'तो फिर भोज के इन्तजाम के लिये रुपया तेरी बहू को दे जा।'

कुछ रुपया नकद दिया। कुछ सामान उधार लाने के लिये समझाया। जल्दी-जल्दी मोटर स्टैंड पर जा पहुंचा।

"मास्टर साहब ! आप शहर जा रहे हैं। मेरा सूट जो आपके साथ चल कर दर्जी को दिया था ले आना। और हां ! उसका हिसाब भी आप करते आना। रुपिया मैं फिर तुमको दे दूंगा।' मेरे एक बगाली मित्र कहने लगे।

'हां हां अवश्य लेता आऊंगा। आप रुपये पैसे की बात करते हैं ? यह तो सब कुछ बाद में होता रहेगा।'

'गुरुजी ! आप शहर से मेरे लिये गणित और साइंस की पाठ्य पुस्तकें लेते आइये। मैं पांच रुपये लीजिये, शेष रकम मैं बाद में पूरी कर दूंगा।" कक्षा ६ का एक छात्र बोला।

'हां हां अवश्य लेता आऊंगा। रकम की क्या बात है ? अगर जरूरत हो तो ये भी रख लो।'

'शर्माजी ! मेरी बहिन के घर पर शादी है। अन्देशा से आता है। कपड़ों और सामान की दर सूची है। आप तो सभी पर कृपा करते

[illegible] यहां आइए। [illegible]
से ठीक नहीं हुई तो यहां के [illegible] की दुकान है, उनमें [illegible] निकालते हैं। अनेकों
बार [illegible] बिना [illegible] उतारे [illegible] दे देगा।
उसी वक्त से [illegible] खरीद कर [illegible]। अगर [illegible] बार से वह
नहीं [illegible] को [illegible] कर [illegible] दो [illegible] बार [illegible] लीजियेगा, [illegible]
[illegible]।' मेरे पास से एक [illegible] बोले।

'हां हां सेठ साहब। यह तो आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है जो यह काम मुझे समझाया है परन्तु आपके काम करने वालों की कमी थोड़े ही है।' मैंने उत्तर दिया और सेठजी मुस्कराने लगे।

'सुना है गुरुदेव का बाहर पधारना हो रहा है।' मेरे पास से एक नेताजी बोले।

"हां नेताजी। कुछेक जरूरी काम निपटाने हैं।"

"परन्तु परसों तो चुनाव है! आपकी नगरी से मैं पंच की जगह के लिए खड़ा हो रहा हूं। आपके घर के वोट तो हमारे 'सोलिड' वोट हैं। आपको यों कैसे जाने देंगे।"

"मुझे जरूरी और सरकारी काम से जाना है। जाये बिना निस्तार नहीं। मुझे जाना ही पड़ेगा और शेष सब तो यहीं है। आप खुद ही उनसे बात कर लें।"

"तो क्या आपके कुटुम्ब के लोगों को हमें अलग-अलग समझाना पड़ेगा?"

'अवश्य यह सब कुछ आप खुद करेंगे। रही मेरी बात सो मैं तो परसों प्रातःकाल ही चला आऊंगा।"

मैं गाड़ी मे ड्राईवर के पास की सीट पर ही बैठा बैठा यह सारी बातचीत कर रहा था। गाड़ी रवाना होने की कन्डक्टर ने सीटी बजाई कि एक खाकी वर्दी वाला व्यक्ति तेजी से आता हुआ दिखाई दिया। गाड़ी रुकी रही।

"बाबूजी! आप पीछे की सीट पर चले आइये। ये हमेशा आगे की सीट पर ही बैठ कर सफर करते है। ये मोटर कम्पनी के मेहमान हैं।" कन्डक्टर ने मुझसे कहा।

मैने एक क्षण मे ही आगन्तुक को ऊपर से नीचे तक देख लिया और बतलाई गई जगह पर जा बैठा। सब लोग मेरी तरफ देखते रहे। तूफान का आना, जमीन का हिलना, खलबली का मचना सभी हृदय मे महसूस हो रहे थे।

तभी पुराना बचपन का मन्त्र याद आया, वही जादूगर—वही गोलाकार सीमा रेखा—वही आत्माओं का चारो ओर से अपने-अपने सवाल लिए आना और उनके सब सवालो मे वह महत्त्वपूर्ण सवाल "मेरा इन्सान के ताजा खून का सवाल है" और फिर अन्य सवालो को पूरा करने के साथ जादूगर द्वारा अपनी उंगली को काट कर उपरोक्त महत्वपूर्ण सवाल को भी पूरा करना—आदि-आदि सभी दृश्य दृष्टि के सामने से गुजर गये।

बचपन मे जो मन्त्र बड़ा आनन्द देता था वह आनन्द आज नही है। बात ठीक भी है। उस समय मैं एक बालक था। कहानी को सुनता और सुनाता मात्र था। आज तो बालक नही हू। फिर भी आत्माओ को जगाने का सवाल सामने है। बचपन की कहानी के जादूगर की तरह सीमा के अन्दर रह कर उसे पूरा करना है। सवाल वही पुराना परन्तु अक बदले हुए है। कल्पना का वह जादूगर केवल मुर्दा आत्माओ को सिद्ध करता था। वरन् आज एक ऐसे जादूगर का प्रश्न सामने है जो जीवित आत्माओ को जगाता है, सिद्ध करता है। और कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि ऐसे जादूगरो से हम सभी जगह घिरे हुए हैं। ऐसी स्थिति मे पुराना मन्त्र इस आयु मे भी सर्वथा उपयुक्त ठहरकर और भी अधिक व्यापक-सा नजर आता है। और लगता है कि इस जादूगरी समाज मे जो जीवित आत्माओ के जितने अधिक सवालो को पूरा करता है वही सच्चा जादूगर है—सिद्ध पुरुष है और कौन-सा ऐसा काम बचा है जिसे वह पूरा न कर सके।

●

अमरनाथ यात्रा

• गुरुदत्त शर्मा

अमर वह है जो मरे नहीं। नाथ से अभिप्राय स्वामी से है। अमरनाथ उनका प्रतीक है जो नहीं मरने वालों के स्वामी हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। आदि का अंत अवश्य है, जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है, सभी भौतिक वस्तुओं का आदि व अंत है, अतः अमर वही हो सकता है जो अभौतिक है। अभौतिक तो अभौतिक ही है फिर खण्ड कैसा और जो अखण्ड है वहां स्वामी और सेवक क्या? इसी प्रश्न पर विचार करते-करते अमरनाथ यात्रा का निश्चय कर ही लिया। चलो वहीं चलकर देखें।

करीब सात साल पहिले गंगोत्री से आगे गोमुख की पहली बार यात्रा करते समय भी एक यात्री ने अमरनाथ यात्रा की प्रेरणा दी थी अतः निश्चय तो वहीं से था पर कार्यान्वित गत वर्ष ही हुआ।

यह सुना था कि अमरनाथ गुफा में प्रत्येक पूर्णिमा को पक्की बर्फ का शिवलिंग बनता है तथा अमावस्या को गल जाता है। अन्य पूर्णिमाओं को तो खंडित लिंग बनता है परन्तु श्रावण की पूर्णिमा को पूर्ण पक्की बर्फ का शिवलिंग बनता है अतः उत्कट इच्छा यही थी कि श्रावण पूर्णिमा को ही दर्शन किये जाय। वैसे इन सभी सुनी हुई बातों का सत्यापन तो तभी हो सकता है जब वहां रह कर ये सब देखा जाय परन्तु अभी इतने समय तक रहना संभव नहीं हो सकने के कारण एक ही दिन का आनन्द लेने के इरादे से पठानकोट का टिकट कटा ही लिया। पठानकोट से श्रीनगर को बस टेढे मेढे घुमावदार रास्तों से स्थान-स्थान पर रुकती चलती है। दोपहर का भोजन जम्मू में किया। जम्मू एक सुन्दर नगर है, रघुनाथजी का मंदिर एवं अन्य दर्शनीय स्थान हैं तथा आसपास की प्राकृतिक छटा देखने योग्य है। यहीं से वैष्णो देवी के लिये यात्रा शुरू होती है। करीब डेढ़ घंटे

वहाँ पर चलकर सुबह होते होते अमरनाथ गुफा के दर्शन हुए। अमर गंगा का बर्फानी पानी और आसमान की ठंडी हवा। स्नान करते ही शरीर सुन्न पड़ गया। पर अमरनाथ दर्शन की उत्कंठा ने फिर शरीर में चलने की हिम्मत दे दी। गुफा पर पहुँचे, भावना में खड़े हो गये। कबूतरों का एक जोड़ा उड़कर आया और गुफा की छत में बने घर में समा गया। सभी ने दर्शन किये उस जोड़े के जो इतनी सर्दी में भी न जाने कितने वर्षों से यहीं निवास कर रहा है। सैकड़ों वर्षों से इस जोड़ी का वर्णन अमरनाथ यात्रा के साथ बंधा हुआ है। कितना भाग्यवान है यह कबूतरों का जोड़ा जो हमेशा भगवान शंकर के सान्निध्य में यहीं रहता आया है। दोपहर के पश्चात् दर्शन-पूजा आदि से निवृत्त होकर लौटने का इरादा किया। इरादा तो वहीं एक दो रात ठहरने का था पर साथी—जो रास्ते में ही साथ हो गये थे, राजी नही हुए। वही प्राकृतिक छटा से ओतप्रोत रास्ता। जगह-जगह यात्री विश्राम करते हुए। कुछ ऑक्सीजन सूंघते हुए उपचार करा रहे थे। सभी को पार करते हुए चन्दन बाड़ी तक आये। चन्दन बाड़ी से पहलगाव के बीच कई एक गांव बसे हुए हैं। जहां कहीं भी विश्राम करें सुन्दर काश्मीरी कुमारियां आकर खड़ी होकर या पास बैठ कर पैसे मांगती हैं। भगवान प्रत्येक को सब सुख नही देता, कहीं न कहीं अभाव अवश्य रखता है।

पहलगाव अपनी छटा का निराला ही स्थान है। मन यहां से चलने को नहीं कहता पर फिर भी यात्रियों को पहलगाव छोड़ना ही पड़ता है। बस सीधी श्रीनगर तक आती है। श्रीनगर की छटा शंकराचार्य पहाड़ी से देखने पर अवर्णनीय आनन्द का अनुभव होता है। शिकारा में रहना तथा नौका विहार का आनन्द अपना अलग ही स्थान रखता है। शालीमार, निशात बाग मुगलकालीन ठाठ की याद दिलाते हैं। अपनी सुन्दर छटा की अमिट छाप दर्शक के हृदय-पटल पर अंकित किये बिना नहीं रहते।

इस प्राकृतिक सौन्दर्य में भगवान अमरनाथ विराज रहे हैं। यात्री यहां आकर चिन्ताएं एवं वासनाएं आदि सभी विकारों को भूल कर एक अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करता है। इसी आनन्द का स्थायित्व मनुष्य को अमर बनाता है। इसी आनन्द में विभोर होकर संसार को भूल जाना तथा इसी आनन्द में डूबे रहने को कहते है अमर हो जाना। फिर न यह है और न वह। अनेक होते हुए भी एक ही है। इसी को कहते हैं अमरनाथ। इस अमरत्व को प्राप्त करने के मार्ग पर चलने को कहते हैं—अमरनाथ-यात्रा।

दोहे

• देवीशंकर शर्मा

अम्बर चढ़नी बादळी, थोड़ी त्यावस साय।
बरसै जतरी बरसजे, रसिया घर आजाय॥

काई ल्यायो बीजळयां, बादळ रा दळ घेर।
सावण मैं जद जाणती, वानै ल्याती लैर॥

ऊपर झरती बादळयां, नीचै झरता नैण।
दो दो बरग्या होवता, सीजू सारी रैण॥

मन मैं तो मावै नही, परबस हूं बस नाय।
लागी होनी पाखड्यां, उड आनी छिन माय॥

घर चेतो लागे नही, पीळो पड़ियो गात।
रोना रोना दिन कटे, तारा गिण गिण रात॥

सेजा सूळा सी चुभे, महल्या लगे मसाण।
वी घर घोड़ा वेच थे, सोया म्हूटी ताण॥

बागा तरवर फूलिया, सरवर भरियो नीर।
घर की सुध ल्यो सायबा, हिवड़ो हुयो अधीर॥

दिन बरसा सा नीकळे, राता जुग सी जाय।
था बिन काळा नाग ज्यूं, घर बटका सू खाय॥

ज्यूं ज्यूं बरसै बादळया, त्यूं त्यूं तरसै जीव।
तू सावण क्यूं आइयो, जै नहि आया पीव॥

•

बस थोड़ा सा प्यार चाहिए

• प्रद्युम्न मनिकपान

सारा सुख ले लो जीवन का, मुझे नहीं संसार चाहिए ।।
प्यासा हूं मैं जनम जनम का, बस थोड़ा सा प्यार चाहिए ।।

तन की भूख मिटी भोजन से,
पर मन का आहार न पाया ।।
छिप छिप कर अन्तर रोता है;
हाय किसी का प्यार न पाया ।।

नहीं मांगता मैं मणि माणिक, छोटा सा उपहार चाहिए ।।

मेरा लक्ष्य नहीं धन संचय;
नहीं मुझे सुख की अभिलाषा ।।
मानस को विश्रान्ति दे सके;
मुझे सुनाओ ऐसी भाषा ।।

मेरी बुझती सी आशा को ज्वाला मय अंगार चाहिये ।।
प्यासा हूं मैं जनम जनम का बस थोड़ा सा प्यार चाहिए ।।

उम्र का परिणाम

• लक्ष्मीकांत शर्मा 'ललित'

आ गया हूँ इतनी दूर
छोड़कर स्नेहिल स्मृतियों के कगार
अब बंध जायेंगे स्वयं
मन और मानस
थकान के द्वार—
न कविता रहेगी
न गीत कहीं,
बिछ जायेगा, अनायास
घुटन टूटन का आयाम
जिसकी कांपती अंगुलियां
लिख देंगी निस्पन्द
इस सफर का,
उम्र का परिणाम।

•

हमारी नेपाल यात्रा

• राजेन्द्र प्रसाद सिंह डांगी

राजस्थान स्टेट भारत स्काउट्स व गाइड्स द्वारा इस वर्ष स्काउटर/गाइडर कान्फ्रेंस व हाइक का स्थान काठमांडू चुना गया। ग्रीष्मावकाश मे यह स्थान उचित ही था। भारत के प्रत्येक प्रात का भ्रमण हो चुकने के पश्चात् पडोसी राज्यों तक पहुँचना रुचिप्रद लगा। इस हाइक मे वे ही स्काउटर/गाइडर सम्मिलित किये जाते हैं, जिन्होने वर्ष भर के कार्य पर ७०%से अधिक अक प्राप्त किये हैं, उन्हें स्टेट चीफ कमिश्नर द्वारा सम्मान पत्र भी दिया जाता है।

उदयपुर विभाग के हम १२ स्काउटर/गाइडर चुने गए थे। विभागीय दल नेता श्री राम चद्र देवपुरा, सहायक कमिश्नर थे। दल दिनाक २४.५.६६ को जयपुर मे एकत्रित हुआ। जयपुर के दर्शनीय स्थान—गलता तीर्थ,आमेर किला, जंतर मतर, चन्द्रमहल, हवा महल, अजायबघर आदि स्थान देखे। रात को १२-३० बजे हम आगरा के लिए रवाना हुए। प्रात काल आगरा पहुचते ही सूर्य की नवीन किरणो के साथ यमुना नदी मे स्नान किया। ताजमहल, एतमाउद्दौला का मकबरा और आगरा फोर्ट भी देखा। ताजमहल को देखने मे बहुत समय लगा, सात आश्चर्यों मे से एक जो है। रात्रि को ६ बजे आगरा से रवाना होकर दिनाक २६ मई को प्रात १० बजे लखनऊ पहुचे, जहां इमामबाडा और चिडियाघर देखा। दिनाक २७ मई को प्रात. ३ बजे लखनऊ से रवाना होकर गोरखपुर पहुचे जहा बाबा गोरखनाथ का मंदिर, गीता प्रेस और आरोग्य मदिर देखे। मार्ग मे आमी नदी के किनारे मगहर मे सत कबीर का मदिर व मस्जिद भी देखे। रात्रि को गोरखपुर से रवाना होकर मुजफ्फरपुर होते हुए दिनांक २८ मई को दिन के ११ बजे रेक्सोल पहुँचे। नेपाल मे पहुंचने के लिए रेक्सोल

भारत का अन्तिम रेल्वे स्टेशन है। यहां से दो मील दूर नेपाल की सीमा में बीरगंज को जाने के लिए रिक्शा ही एक वाहन है। दोनों गावों में दो-दो चौकियों पर सामान का पूरा निरीक्षण कराना होता है। बीरगंज में हम धर्मशाला में ठहरे। वहां के विभागीय मंत्री नेपाल स्काय र गर्ल स्काउट एसोसिएशन हमें मिले। उनकी मदद से हमने बैंक में भारत का रुपया नेपाल के रुपयों में परिवर्तन कराया। भारत के एक सौ रुपये नेपाल के एक सौ पैंतीस रुपयों के बराबर होते हैं। नेपाल देश की अन्य जानकारी भी हमने उनसे प्राप्त की। दिनांक २६ मई को प्रातः तक सभी विभागीय दल बीरगंज पहुंच चुके थे। हमारे लिए हिमालय ट्रांसपोर्ट द्वारा काठमांडू जाने की व्यवस्था की गई थी। प्रातः ८ बजे बसों में बैठे। रवाना होने से पूर्व प्रत्येक यात्री का नाम, पता और हस्ताक्षर कर देना होता है। विशेष स्वीकृति चाहने पर बीरगंज में ही बसों में बैठे-बैठे गए थे। वहां एक राजस्थान होटल था जहां हमने चाय नाश्ता लिया।

दस बजे हम काठमांडू के लिए रवाना हुए। मार्ग में सड़क नदी के किनारे कई दूर तक चलते हुए, ऊंचे नीचे पर्वतों पर चढ़ते हुए, प्राकृतिक दृश्यों को साथी बनाकर हमारी बस अग्रसर हुई। ज्यों-ज्यों हम एक पहाड़ पर चढ़ते, त्यों-त्यों हमें और ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ने का आभास होता। कई पहाड़ों को ऐसे लांघ गये जैसे कोई वायुयान शीघ्र ही लांघ जाता है। ऐसा ज्ञात हो रहा था कि शेरपा तेनसिंह ने तो पैदल भ्रमण द्वारा एवरेस्ट विजय की और हम बस में सवार होकर ही विजय प्राप्त कर लेंगे। मार्ग में कई स्थानों पर जलपाहार-गृह भी मिले, जहां की चाय हमारी जीवन-नौका का कार्य कर रही थी क्योंकि १२७ मील लंबा रास्ता और वह भी उतार चढ़ाव तथा लगभग १५०० मोड़ का था। लगभग ११ घंटे हमें काठमांडू पहुंचने में लगे। मार्ग में सबसे ऊंची पर्वत चोटी जो हमने पार की, लगभग ८००० फुट ऊंची थी। काठमांडू सिर्फ लगभग ४ हजार फुट की ऊंचाई पर है। रात्रि को ६ बजे काठमांडू पहुंचने पर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेवाड़ी राणा के वंशज के राज्य में हम आ पहुंचे हैं। हमारे ठहरने का स्थान नेशनल हेडक्वार्टर्स भवन था। भवन अभी नया ही था एवं पहली बार ही हमें रहने को मिला। ११ जून को उस भवन का नेपाल महाराजा द्वारा उद्घाटन होने वाला था। भवन के चारों ओर लंबा चौड़ा मैदान है, जिस पर हरी दूब फैली है। हमारे पूरे दल के नेता—सुश्री विमला शर्मा और श्री गणेशराम जी वहां तैयार खड़े थे, हमारी

में ट्रूप, कम्पनी, पैक व फ्लाक मीटिंगों के आदर्श रूप हुए। तत्पश्चात् एक विषय —फर्स्ट क्लास व प्रेसिडेंट स्काउट का पाठ्यक्रम—पर बीकानेर विभाग द्वारा पेपर पढ़ा गया और विचार विमर्श हुआ। रात्रि को कैम्प-फायर हुआ।

दिनांक १ जून को प्रातःकाल से ही कान्फ्रेंस में विभिन्न विषयों पर प्रत्येक विभाग द्वारा पेपर पढ़े गये व चर्चाएं हुईं। विषय थे—(१) गुणात्मक व संख्यात्मक प्रगति, (२) आंदोलन स्वावलम्बी है, (३) स्काउटर/गाइडर अपना कार्य सरल कैसे बनावें, (४) ग्रुप कमेटी जन सम्पर्क का साधन है, (५) प्रधानाध्यापक आंदोलन की प्रमुख कड़ी है, (६) क्या हमारा पाठ्यक्रम सामयिक है। अपराह्न में प्राचीन नगर पाटन व हनुमान धोका देखे।

दिनांक २ जून को प्रातःकाल से ही बाजार में घूमने फिरने के लिये व्यक्तिगत रूप से छोड़ दिया गया। सबों ने बाजार में अपनी कई इच्छित वस्तुएं खरीदकर जेब खाली कर डालीं। मध्याह्न में भोजन के बाद आज के उस कैम्प-फायर का पूर्वाभ्यास किया, जो रात्रि को भारतीय दूतावास में करना था।

रात्रि को सब वहां पहुंचे। वर्षा होने से हाल में ही कैम्प-फायर का स्काउटरों, गाइडरों द्वारा बहुत सुन्दर व आकर्षक कार्यक्रम रखा गया जिसे देखकर भारत के राजदूत श्री राजबहादुर व उनकी श्रीमती बड़ी प्रभावित हुईं। अन्त में उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में राजस्थानी गीतों व नृत्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने राष्ट्रीय एकता का जिक्र करते हुए कहा कि प्रथम बार, सन् १९६५ में भारत पाकिस्तान युद्ध के समय मद्रास व केरल वालों ने राजस्थान की सीमा पर युद्ध में मदद कर उत्तर दक्षिण के मध्य कल्पित लक्ष्मणरेखा को मिटा दिया। भारत ने कभी दूसरे राष्ट्र की एक इंच भूमि पर भी आक्रमण नहीं किया, मगर हमारे भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने वर्षों के इतिहास को बदल कर उसमें एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया। उस समय कम उम्र के जवानों ने ही हमारी शान रखी थी। हम स्काउटों, गाइडों से भी ऐसी आशा रखते हैं। उन्होंने कहा कि नेपाल पर खतरा भारत पर खतरा समझा जायगा और भारत पर खतरा होने पर नेपाल चुप नहीं बैठा रह सकता क्योंकि दोनों एक हैं। उन्होंने दोनों देशों के स्काउटों गाइडों के दीर्घायु की कामना की। अन्त में हम देश के साथ हमारा कार्यक्रम समाप्त किया—

"तुम सलामत रहो हजार बरस,
एक दिन हो पचास हजार बरस।"

दिनांक ३ जून को प्रातःकाल ही उस पवित्र भूमि की रज को चूम कर बसों में सवार हुए, जो विश्व का एकमात्र हिन्दू राष्ट्र है। इसी प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य नेपाली स्काउटों, स्काउटरों को धन्यवाद देकर "जय भारत-जय नेपाल" के निनाद के साथ रवाना हुए, वापस अपने घोंसलों को, अपने वतन को। अपराह्न मे रैक्सोल स्टेशन पहुंचे। कानपुर रुकते हुए दिनांक ६ जून को जयपुर पहुंचे।

एक कविता

• योगेश्वर 'मनुज'

धर्म की सड़कों में
निकलने वाली ये छोटी गलियां,
मुर्दे से खड़े, मकानों के आसपास
बहने वाली ये गन्दी नालियां,
बुद्धिहीन से कहीं कहीं पड़ने वाले,
ये भ्रमात्मक चौराहे,
अतृप्त आशाओं-सी बनने वाली
अन्ध विश्वासी ये नई राहें,
पड़ कर गिरने, गिर कर उठने वाले
ये बेतुके नारकीय नुक्कड़,
वासना व कामुकता से सने
मोहल्लों के निवासी, मतान्ध
बहुरूपिये से मानवों को,
इधर उधर घुमा कर फेर में डाल देती हैं
ये सब।
मगर मानव को फिर भी न जानें,
क्यों-कैसा इनसे लगाव है!
यद्यपि इनसे दिल में— मनमुटाव है।
सच्ची शान्ति—ईश दर्शन—मानवता को
सास प्राप्त करनी है...
और जानना है यदि
धर्म का सही अर्थ

तो सड़क के किनारे—
खड़े पेड़-पौधों-बेलों
घास व बिछी हुई हरियाली
दूब से
जानो।

नागों की भीड़

• अर्जुन 'अरविंद'

नागों की भीड़ में
कुछ सुनाई नहीं पड़ता
पूरी बस्तियों का हर दावा
मुँह में आँसू दबाये चीख रहा है
सब के पैर
कीचड़ में लथपथ हैं
हाथों में लहू की बूंदें रिस रही हैं
उन्होंने खून कर दिया है
भाग्य के पशु का
पी लिया है
दिशाओं का जहर
रात की
सड़न भरी गन्दगी में
एक एक ने कूद कर स्नान किया है
कंधों की हड्डियां चटख कर टूट गई हैं
सब के हाथों में डंडे हैं
और उन पर
फटे चिथड़ों के झण्डे हैं
हर एक
अपना झण्डा ऊंचा करना चाहता है
आज दिन भर से
गालियां थूकने का क्रम चलता रहा
जो एकत्र होकर नदी बन बह गया है

एक जत्था पड़ता है
व्यवस्थाओं के पहाड़ पर
और बारूद से फूंक देता है
एक समूह ने
अनुशासन की सभी जंजीरें तोड़ ली हैं
कुछ ने
जंजीर के छल्ले
अपनी अंगुलियों में पहन लिये हैं
हर रात
भोजन में परोसा जाता है
विवशताओं का मांस
दरिद्रता का मक्खन
और कुण्ठाओं का जल
भोजन के बाद
पी जाती है बीमारियों की कॉफी
तंदुरस्ती के प्यालों में ढाल कर
अपने दिन भर के कामों पर
ठहाका मार कर हंसते हैं
फिर सो जाते हैं
चिर निद्रा में।

डायरी का एक पृष्ठ

• सीता अग्रवाल

२० अप्रेल, १९६९ : प्रातःकाल के चार बजे हैं, मैं विद्यालय के कुछ आवश्यक कार्यवश शिक्षा उपाध्यक्षाजी से मिलने उदयपुर आई हूं। रात को देर से पहुंची थी परन्तु पड़ौस मे दो बच्चो के रोने के कारण नींद खुल गई है और कोई आध घंटे से रोकर दोनों बच्चे सम्भवतः थक कर चुप हो गये हैं, अब केवल बीच-बीच मे उनकी सुबकी सुनाई दे रही है। बच्चे थककर सोये जा रहे हैं और मैं बेचैन होकर वापस सोने की असफल चेष्टा कर रही हूं।

७–८ माह पूर्व प्रधानाध्यापिकाओं की एक बैठक मे जब मैं यहां आई थी उस समय की एक घटना स्मरण हो आई है और मैं स्वयं अपने बच्चो के विषय मे भी चिन्ताकुल हो उठी हू जिन्हे मैं छोड़कर आई हू। फिर भी मुझे अपने जीवन में ७ माह पूर्व वाली उस घटना के अतिरिक्त ऐसा कोई दिन याद नहीं आता जब किसी के भी बच्चे इतनी देर तक रो-रोकर बेहाल हो उठे हो और माता-पिता जो तथाकथित उच्च शिक्षा प्राप्त किये हो,(माता ने गृह विज्ञान व मातृकला विषय का नियमित अध्ययन किया हो) निश्चिन्त और बेखबर हों।

जिस मकान मे मैं रहती हूं उसके आधे भाग मे दो नवयुवक परिवार रहते हैं, सम्भवतः दोनों राजकीय सेवा मे हैं, दोनों की पत्नियां हाई स्कूल पास हैं, हंसमुख व मिलनसार हैं एक का हाल ही विवाह हुआ है और दूसरी भी २० वर्ष के लगभग एवं दो बच्चों की माता है जिनमें से एक तीन वर्ष की व दूसरी दो वर्ष की लड़की है। सितम्बर में जब मैं यहां ठहरी हुई थी तब बड़ी लड़की का पैर साईकिल की चैन मे फंस जाने से एक गम्भीर दुर्घटना हो गई थी। बच्ची की उंगलियां कट गई थीं तथा दोनों

पैरों के तीन ऑपरेशन हो चुके थे। करीब एक माह से चलना-फिरना बन्द था। कष्ट से बच्ची को बुखार रहता था तथा असाधारण दुर्बलता व दैन्य चेहरे से टपकता था, माँ ने दिन में उसके कष्टों का वर्णन किया और साथ ही अपना भी सब कार्य व दिनचर्या के इस घटना से अस्त-व्यस्त हो जाने का हाल बताया।

दूसरे दिन रात को साढ़े ग्यारह बजे कमरे से बच्ची के रोने की आवाज आई और मेरी नींद खुल गई। कोई आध घंटे तक बच्ची चिल्ला-चिल्ला कर रोती रही और मम्मी डैडी को करुण स्वर में पुकारती रही। चिल्लाते-चिल्लाते उसका गला रुंध गया और वह रोते-रोते पानी-पानी कहने लगी। किसी विशेष परिचय रहित-पढ़े लिखे परिवार के बीच रात को १२ बजे दखल देने में संकोचवश मैं, आध-पौन घंटे तक वह करुण क्रन्दन सुनती रही और बेबसी अनुभव करती हुई करवटें लेती रही, अंत में बच्ची का करुण स्वर असह्य हो उठा, मेरी आँखों से आँसू बह निकले, और इस अमानुषिकता को देख मेरा हृदय रोष से भर गया—मुझे लगा कि रोग और कष्ट से पीड़ित बच्ची कहीं पानी पानी चिल्ला कर दम न तोड़ दे। मैं सभ्यता के बन्धन को तोड़कर उठी और बच्ची के कमरे के पास आई। द्वार अन्दर से बन्द थे आंगन की ओर खिड़की खुली थी, पर मोटा पर्दा इस तरह लगा था कि मैं बच्ची को देख नहीं सकती थी। मैंने मुन्नी-बेबी कह कर उसे पुचकारने व चुप कराने का प्रयास किया परन्तु वह सहानुभूति पाकर चुप होने के स्थान पर और भी फूट फूट कर रोने लगी और मम्मी-मम्मी पुकारने लगी। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मामला क्या है और मैं क्या करूं। पुन. द्वार की ओर जाकर मैंने दरवाजे को जोर से भड़भड़ाना शुरू किया। कुछ देर बाद हल्के पैरों की आहट हुई और एक १२-१३ वर्ष का लड़का आया। आकर उसे चुप करने की कोशिश की और पानी पिलाकर वापस सो गया। बच्ची भी चुप होकर सो गई। परन्तु मेरी आंखों में नींद न थी।

कोई १ बजे करीब बाहर का गेट खुला। दोनों भाई अपनी पत्नियों सहित अन्दर आये। मेरा रोष उसी समय प्रकट होना चाह रहा था पर मैंने बहुत संयमपूर्वक अपने कमरे से ही पूछा, 'कौन ?' उत्तर मिला, "यह तो हम ही हैं।" मैंने कहा, "आपकी बच्ची डेढ़ घंटे तक रो-रोकर अभी चुप हुई है। मेहरबानी करके उसे पहले संभालें।" इसके कुछ समय बाद मुझे निद्रा देवी ने अपनी वात्सल्यमयी गोद में शरण दी और मेरी अशान्ति

दूर हुई।

सुबह उठते ही जब माता मिली तो लज्जित-सी मुझे कहने लगी, "बहुत दिन से सिनेमा न देख पाये थे। रात को बेबी सो गई थी सो उसके चाचा के पास छोड़ कर हम लोग अंतिम शो देखने चले गये थे।" मैंने रात की घटना उसे पूरी बताकर अपना रोष प्रकट करते हुये कहा कि यदि छोटे से चाचाजी कुछ देर और न जागते तो या तो दरवाजा तोड़ना पड़ता या तुम बच्चों से हाथ धो बैठती।

आज फिर दोनों बच्चों के रोने से मेरी चेतना ने मुझे झकझोर दिया है। गृह कार्यों अथवा बुजुर्गों के प्रति लापरवाही और अश्रद्धा तो पढ़ी-लिखी लड़कियों में अनेक बार देखने को मिली थीं परन्तु वात्सल्य एवं मातृत्व का इतना ह्रास मैंने पहली बार अनुभव किया है। पढ़ी-लिखी माताएं कष्ट पीड़ित एवं अबोध बच्चों की चिन्ता किए बिना अपने सुख एवं मनोरंजन को इतना महत्व दे सकती हैं, उनका अचेतन मानस भी बच्चों के प्रति वात्सल्य के नैसर्गिक भाव से इतना रहित हो सकता है कि वे पास होते हुई भी बच्चों के रोने-चिल्लाने से जागतीं नहीं, यह बहुत आश्चर्य का विषय है। सच पूछा जाय तो यह आश्चर्य का नहीं चिन्ता का विषय है। हमारे विद्यालयों में गृह विज्ञान व मातृकला की शिक्षा पाई हुई लड़कियां यदि जीवन में अपनी विद्या का यह उपयोग करती हैं तो ऐसी भावना-शून्य यांत्रिक शिक्षा से क्या लाभ है? शैशव में मां के असीम स्नेह को पाकर बड़े होने वाले बच्चों की तुलना में ऐसे बच्चे मानसिक ग्रन्थियों व कुण्ठाओं से पूर्ण एवं समाजद्रोही हों तो क्या आश्चर्य? क्या यही वह शिक्षा है जिसके आधार पर हम अपने विद्यालयों में अंधकार से प्रकाश की ओर जाने का मार्ग दिखाते हैं?

बच्चों की सुबकियां अब बन्द हो गई हैं। परन्तु ये कुछ प्रश्न हैं, जो बार-बार मेरे मानस में उठते हैं। मैं अपने सहकर्मियों, शिक्षा शास्त्र के विशेषज्ञों एवं शिक्षा जगत के कर्णधारों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहती हूं और जानना चाहती हूं कि इस समस्या के हल के लिए क्या कुछ उपाय सोचे और कार्यान्वित किये गये हैं।

अभी बहुत हैं

• गिरिवर गोपाल अलवरी

सिसकी हुई बेहोश व्यथाएं इस दुनिया में अभी बहुत हैं
रक्त उगलती हुई कथाएं इस दुनिया में अभी बहुत हैं

यह कैसी दुनिया है मानव मानव से अनजान हो गया।
कोई तो शैतान हो गया और कोई भगवान हो गया
वर्ण-व्यवस्थाएं सड़ती हैं इस पौराणिक नाबदान में
उठती है दुर्गन्ध अपरिमित विश्व देवता के मकान में
प्रतिभाओं की देह दबोचे ताक रही हैं वृद्ध जातियां
सामंतों के अंक पाश में चुचुआती हैं नई क्रान्तियां
शोषक की यह आदि व्यवस्था लचक मार कर जी जाती है
कमल कोष के अधरों पर तो वही जोंक लिपटी पाती है
प्रजातंत्र के बाल यती को सुघा रही जो आशकाएं
याज्ञवल्क्य मुनि की विधवाएं इस दुनिया में अभी बहुत हैं।

क्या रक्खा है स्वतन्त्रता की सुनी सुनाई इन बातों में
यह तो रात उतर आई है अन्धा चान्द लिए हाथों में
रघुपति राघव रीझ न पाए सीता ने सब भांति निबाहा
तुलसीदास पसीज न पाए फूंक गया घर बार जुलाहा
उन्नत शीश पराए धड़ पर उनको राम नहीं आते हैं
शूद्र गवार और पशु नारी अभी कहां भागे जाते हैं
जो मशाल जलती है आखिर गुम हो जाती अन्धकार में
नए बोध के बिम्ब अभागे घसे पड़े हैं धुआधार में
नए नए पेशे अपना कर बैठ गई हैं धर्मकथाएं
ये परजीवी परम्पराएं इस दुनिया में अभी बहुत हैं।

जाने क्या हो गया कि इस रस्ते का अन्त नहीं आता है
पतझर चाहे बीत गया हो पर बसन्त नहीं आता है।
घुसे पड़े हैं नई पीढ़ियों के आलिंगन में परदादे
इन्कलाब की अंगड़ाई के मजे लूटते हैं शहजादे
कौंच कौंच कर देख रहा हूँ अभी आदमी मरे पड़े हैं
बंधी हुई मुट्ठी में खाली दो दो पैसे धरे पड़े हैं
प्रेतों के हाथों पर पिघल रही है चान्दी की रामायन
सूरज के सौ सौ टुकड़ों को निगल रही है अंधी डायन
मुंडेरों पर बलिदानों के दीप कहाँ तक रखने जाए
उन्हें बुझाने को मचाए इस दुनिया में अभी बहुत हैं।

मेरे दरवाजे पर दस्तक देता है इतिहास पुराना
'मुझ को एक बार दिखला दो कैसा है यह नया जमाना'
देख रहा हूँ नई देह को, बटी पड़ी है दो भागों में
उबल रहे मस्तिष्क वासना क्षुधा पिपासा के भागों में
नई फसल के बीज बाट कर खिला रहे हैं अध्यापों को
नई सुबह की सेज सौंप दी गई पुरानी सन्ध्याओं को
बाट लिए अस्तित्व, भाल पर अलग अलग सम्मान गड़े हैं
हम मर जीवों के कंधों पर, ईश्वर के अहसान लदे हैं
जीने में लाचार आदमी बिना मौत कैसे मर जाए
यद्यपि ऐसी आशंकाएं, इस दुनिया में अभी बहुत हैं।

अपनी किस्मत में गैरों की मेहनत भर लेने को आतुर
आदि व्यवस्था के पौराणिक देख रहे हैं, आग फाड़ कर
छिन्न भिन्न दरबार हो गए अन्धकार का माप न देगी
बलिदानों को बेच रहे जो उनको अपना हाथ न देगी
कल तक जो आवारा थे वे विश्व प्रचारक मुक्त हो गए
जग जग में आन्दोलन भी आज तनकर युद्ध हो गए
इसीलिए तो घबरा कर वे मरे दर्द को जाँच रहे हैं
लाख बरस पहले के हस्ताक्षरों को फिर बाँच रहे हैं
ताकि पुराने भार नई पीढ़ी के कन्धे पर चढ़ जाएँ
क्योंकि अभी ये परम्पराएँ इस दुनिया में बहुत बहुत हैं।

राजघाट पर बापू जी के थामे की हरियाली ओढ़ कर
लोग उतारे राजगद्दी के कांटों की हरियाली दे कर

दह दह चलने लगी कुल्हाड़ी, टूट रही है कनक-किवाड़ी
शोर मचा है भागो भागो, नक्सल वाड़ी नक्सल वाड़ी
पूंजी के पहियों को पकड़े हुए सेठ घिसटे जाते हैं
अरे कौन ये रामराज्य का सिंहासन उलटे जाते हैं
तुम मुझसे क्यों पूछ रहे हो ये किसके हैं नए इरादे !
लोग यहां तैयार खड़े है जो चाहे उनको बहका दे
क्या यह मैंने नहीं कहा था, मत काटो ये रक्त शिराए
जीवित रहने की इच्छाएं इस दुनिया मे अभी बहुत है।

•

हिन्दी-काव्य-साहित्य के चार महान

• पृथ्वीसिंह चौहान 'प्रेमी'

कबीर की कविता

भेद मात्र शून्य वेद सम्मत सदैव, नाव—
रश्मि बनी है भव-सागर गम्भीर की।
दिव्य एक रस से अभिन्न करने के हेतु,
भिन्नता भुलानी हिन्दू-मुस्लिम शरीर की।
मन्दिर में मस्जिद से पूजा से नमाज से भी,
ऊपर उठानी बानी फक्कड़ फकीर की।
जगती की दुविधा मिटानी सुविधा से, सूर—
सरिता के नीर जैसी कविता कबीर की॥

अन्धी अंखियान में

नंद जसुदा-सों दुलरायो हुलरायो, हुल—
सायो हिये, लिए कामना की कखियान में।
नेह-नवनीत दै निल्हायो नैननि की धार,
रैन में सुलायो भावना की पखियान में।
गोपिन को गोरस चुराय दौरि आयो तब,
जतननि गोपन कियो है छतियान में।
सूर की बड़ाई चतुराई को बखाने कहा,
बदी थी कन्हाई जाकी अन्धी अखियान में॥

मानस में तुलसी के वचन

इतनो कमाल कोऊ अब लौं दिखायो नहीं,
जितने निहाल भे निवासी पुहुमी के हैं।
सतत जो सेवन ते करत मनन हिन,

संतन हिये के हार मुक्ता मगनी के हैं।
करते प्रतीत जोग हरने को भव रोग,
हिन्दु बना सभी को बिन्दु सुधा-औषधी के है।
सींचि जन-मानस को करुन सरस सुचि,
मानस में वीचि-से वचन तुलसी के हैं॥

तुलसी की कविताई

नर-गुन-गान को न सारदा स्रमित करी,
पवित चरित नित गायो रघुराई को।
भव-रुज-रोगिन को भेषज अमोल देय,
योगिन की सरल करी है कठिनाई को।
वेदन के मथन ते विविध मतांतर को—
दूर कर, पूर दीन्ही अन्तर की खाई को।
बूडतो समाज उबरिगो भव-वारिधि तें,
पाय कै जहाज तुलसी की कविताई को॥

मीरां और मोहन

मीरां के मन्दिर आवते मोहन,
मोहन - मन्दिर जावती मीरा।
मीरा का रीझता मोहन से मन,
मोहन को सु रिझावती मीरा।
मीरा को थे उर लावते मोहन,
मोहन को उर लावती मीरा।
मीरा के थे मन भावते मोहन,
मोहन के मन भावती मीरा॥ १॥

मोहन की बजती मुरली पग—
घूंघरू थी घमकावती मीरा।
देखने दौड़ते मोहन थे, वह—
मंजुल नाच दिखावती मीरा।
कान दे मोहन थे सुनते, वह—
जो कुछ बावरी गावती मीरा।
जाते समा कभी मीरा में मोहन,
मोहन में थी समावती मीरां॥ २॥

मीरा को मोहन ही थे कबूल भी,
मोहन को भी कबूल थी मीरा।
पाले उड़े हुए तून-से मोहन,
जाती उड़ी हुई तून थी मीरा।
गौरव रंजित मोहन थे,
चरणों पै चढ़ी वह फूल थी मीरा
मीरा बिना किसे मोहते मोहन,
मोहन के बिन धूल थी मीरा ॥ ३ ॥

सीने में समाने हेतु

मोह-लाज छोड़ दौड़ दौड़ हरि-मन्दिर को,
साधु-संग बैठने को मजबूर हो गई।
निरख-निरख पूर नूर नन्दलाल जी का,
सरक-सरक दुनिया से दूर हो गई।
कौड़ी तोल बेच अपने को गिरधारी हाथ,
दिव्य अनमोल हीरा को हे नूर हो गई।
प्रेमी श्यामसुन्दर के सीने में समाने हेतु,
मीरा नाच-नाच के पसीने चूर हो गई॥

घोर धनागार की घनी छाया में
स्वयं को भी न पहचान सकने की विवशतायें;
कहां जीने देती है—
मवेशासन।

आज दो महीने हो गये। आखिर हम जो ट्यूशन घर-घर देते फिरते हैं तो क्या इसीलिए ...... 'हमारे घर भी तो इसी के सहारे चलते हैं " "घोड़ा घास से यारी करेगा तो खायेगा ...।'

मैं और सजग व सतर्क होकर कुर्सी पर बैठ जाता हूं।

आंगन के पूर्वी कोने से पीली धूप के अवशेष भी लुप्त हो गये हैं। घर में व्याप्त सन्नाटा चिड़ियों की सहसा ही प्रारम्भ हो गयी चूं-चूं से और भी अधिक महसूस होने लगा है। दूर किसी मकान से पारिवारिक कलह की आवाजें सुनायी देने लगी हैं।

मैं इन सब से ध्यान हटाकर मेज के कोने में चुनी हुई पुस्तकों पर दृष्टि दौड़ाता हूं। इन पुस्तकों में से सहसा ही कुछ पुस्तकें मैं निकाल लेता हूं। ये मेरी पुस्तकें हैं। इन्हें मीरा को पढ़ने के लिए मैंने दे दिया था और वापस ले जाना भूल गया था। खैर, अब इन्हें लेता जाऊंगा। अच्छा ही हुआ जो नजर पड़ गई।

मुझे याद आते हैं वो दिन।

× × ×

आनन्द प्रकाश ले आया था मुझे यहां।

वह इन्हीं के पड़ोस में रहता था और यहीं के राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक था। उसने मुझसे कहा था, "मैं तो मैं यहां पढ़ जाता भी मीरा। किन्तु ट्रांसफर हो जाने के कारण अब मैं पढ़ा न सकूंगा। और मैं चाहता हूं कि अब यह प्रबन्ध हो जाए।"

मुझे ज्ञात हुआ था कि आनन्द प्रकाश अविवाहित है। मैंने चुटकी लेकर कहा था "क्या मामला है भाई! कुछ चक्कर-वक्कर तो नहीं चल रहा जो ...।'

'नहीं नहीं, भाई" मेरी बात को बीच में ही काटकर उसने इस परिवार की व्यथापूर्ण कथा कह दी थी।

मीरा के दादा किसी जमाने में अच्छे खासे मजदूर और प्रसिद्ध व्य[illegible] थे। उन्होंने कुम्हारी में बहुत धन कमाया। खूब खाया और उड़ाया लेकिन फिर भी बहुत कुछ छोड़ गये मीरा के पिता के लिए किन्तु [illegible] केवल उड़ाना ही सीखा, कमाना नहीं। इसके बाद [illegible]

प्रकाश ने कहा था, "इस व्यक्ति पर क्रोध भी बहुत आता है और तरस भी आता है। सन् बत्तीस का लॉ-ग्रेजुयेट है। योग्य है। लेकिन न तो प्रेक्टिस करता है और न कुछ और। दिन भर अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास पढ़ेगा या अखबार चाट जायेगा जितने भी मिलेंगे और फिर इस अर्जित ज्ञान का सदुपयोग या तो जुए में करेगा या फिर उसे शराब में घोल कर पी जाएगा।"

अन्दर से खोखले ही नही, बेहद खोखले हैं। लेकिन फिर भी अपनी खानदानी इज्जत के पीछे दीवाने हैं। वकील साहब के शब्दकोष में इज्जत की न मालूम कौन-सी परिभाषा दी हुई है। लेकिन है फिर भी कुछ। घर में प्रवेश करते ही घर की गरिमा का आभास तो होता है। शायद मीरा की मां के कारण।

सारी कथा कहने के बाद आनन्द प्रकाश ने प्रार्थना-सी अपने स्वर में भरते हुए कहा था, "सब कुछ मीरा पर निर्भर करता है। पढ लिखकर कही नौकरी कर लेगी तो परिवार बच जायेगा। इसीलिए मैं चाहता हूं·······वैसे कोई और बात नही है।"

और मैं सहमत हो गया था। मैंने सोचा था, 'पैसे नही भी मिलेंगे तो भी पढ़ाऊंगा। पुण्य का कार्य होगा।'

और एक दिन वह मुझे ले आया था यहा।

सामने ही आगन में एक बहुत पुराने मॉडल की आर्मचेअर पर वकील साहब (मीरा के पिता—वह इसी नाम से जाने जाते है) बैठे सिगरेट पी रहे थे। पास ही दो-तीन कुर्सी और पडी थी। कुर्सी बैत से बुनी रही होगी किसी समय किन्तु अब उनमे स्थायी रूप से लकडी के पट्टे ठोक दिये गये थे। उन पर गद्दिया पडी थी—अजीब मटमैले रग की। न गन्दी न साफ।

वकील साहब ने आनन्द प्रकाश का नमस्कार बड़े सहज भाव से लिया, मुझ पर एक साधारण-सा दृष्टिपात किया और फिर आख मूंद कर न जाने किन विचारो मे खो गये। मैं तो उन्हे खुमारी मे खोया हुआ या नशे मे धुत्त ही समझ लेता यदि वह बार-बार सिगरेट पीने के लिए हाथ को मुंह तक न ले जाते।

थोडी देर बाद आनन्द प्रकाश ने उनसे मेरा परिचय कराया तो

थोड़ा वह नम्र हुये। यह जानकर कि मैं अंग्रेजी अध्यापक हूं उन्होंने अंग्रेजी में ही बातें प्रारम्भ की। उन बातों का सार था, 'कि मीरा को वह पढ़ा इसलिए नहीं रहे हैं कि उन्हें उससे नौकरी करानी है।" कि भला उन जैसे उच्च खानदान वालों की लड़कियां कहीं नौकरी करती फिरती हैं। '" कि वह तो उसे केवल इसलिए पढ़ा रहे हैं कि पढ़ लिख जाये तो किसी आई. ए. एस. अफसर से उसका विवाह कर दें।' कि ' और कि।"

थोड़ी देर बाद वकील साहब ने मीरा को बुलवा कर मेरा उससे परिचय करा दिया था और मुझसे कहा था कि मैं पैसों की चिन्ता बिल्कुल न करूं। वो समय से पूर्व ही मुझको मिल जाया करेंगे। और कि अगर मुझे और भी आवश्यकता हो तो मैं सकोच न करूं। अपना ही घर समझूं और मीरा को पढ़ाऊं परिश्रम से।

दूसरे दिन जब मैं मीरा को पढ़ाने पहुंचा तो मीरा उस बरामदे-नुमा कमरे में नहीं थी जहां कि मुझे उसको पढ़ाना था। एक मेज और एक कुर्सी तो थी, मेज पर मेजपोश भी था। किन्तु कापी और किताब के नाम पर वहां कुछ भी न था। मैंने मीरा को तीन आवाजें दीं, तब वह अन्दर से आयी। उसके नेत्र लाल पड़े हुये थे और सूजे हुए थे। कोरों में अभी तक नमी शेष थी।

शब्द मेरे मुंह से न निकले, केवल आश्चर्य से उसकी ओर देखता रह गया। वह शायद मेरी आंखों में छुपे प्रश्न को भाप गयी। बोली, "आंख में कुछ पड़ गया था मास्टर जी। बड़ी दुख रही है। आज तो न पढ़ सकूंगी।"

मुझे उसकी बात सुन कर मन ही मन हंसी आयी। सोचा—सही बात पूछूं। किन्तु टाल गया। मुझे क्या करना था। मैं चुपचाप उठ कर चला आया। केवल इतना ही कहा, परीक्षा में समय कम रह गया है। किताबें अवश्य मंगा लेना।

और अगले दिन"......मीरा अपनी कुर्सी पर बैठी थी। उसके पास कापी भी थी और पेन भी किन्तु किताब गायब। मैंने उससे पूछा तो क्षण भर के मौन के बाद बोली, "पापा से कहा तो था, शायद भूल गये।"

और उस दिन मैंने उसे जनरल वर्क करा दिया था।

और फिर एक के बाद एक दिन बीतते गये और जनरल वर्क होता रहा किन्तु किताबें नदारद। मैंने मीरा से कहा भी, "जनरल इंगलि तो चल भी जाती है इस तरह, लिटरेचर न चल सकेगा।"

मीरा ने स्वीकार किया था किन्तु बस इतना ही। और फिर तीन दिन बाद.........

मैंने कुछ रुष्ट होकर कहा था, "आखिर मामला क्या है मीरा यदि पुस्तकें नहीं आनी तो मेरे आने से कोई लाभ होना है क्या?"

तभी मीरा की मां उठ कर आयी थी। उन्होंने कहा था, "मीर ने शायद बताया नहीं मास्टर जी आपको। किताबें तो कई रोज पहले आ गयी थी इसकी। पर इसका चचेरा भाई उन्हे ले गया। इस वर्ष तो ये परीक्षा देगी नहीं।"

उनकी बात सुन कर मुझे क्रोध आ गया था। मै अपने सोलह दिनो के बारे मे सोच रहा था।

इस बात की प्रतिक्रिया मुझसे अधिक शायद मीरा के हृदय पर हुई थी। सहसा ही उत्तेजित हो उठी थी वह। बोली थी, "कोई किताबे विताबें नहीं आयी मास्टर जी। पिता जी को शराब और' ' 'से फुर्सत मिले तब न।"

मेरा क्रोध क्षण भर मे काफूर हो गया। मैंने आश्चर्य से एक बार मीरा के चेहरे पर देखा। वहा तनाव था और शायद आसुओ की उमड आने को आतुर बाढ। मैंने तत्क्षण उसके चेहरे से दृष्टि हटा ली और मीरा की मा की ओर देखा। उनका चेहरा एकदम पीला और निस्तेज हो गया था। क्षण भर को तो वह स्तम्भित सी ताकती रह गयी और फिर सूनी दृष्टि मेरे ऊपर डाल कर अन्दर चली गयी।

एक बाहरी आदमी के सम्मुख मीरा ने घर की बात कह दी थी—इसका आघात उनके लिये शायद असह्य था। न जाने क्यो मैं दयार्द्र हो उठा था।

"तो मुझसे पहले ही कहना था।" मैंने केवल इतना ही कहा था और चला आया था।

और इसके बाद मैंने मीरा के लिये कुछ कही से और कुछ कही से पुस्तकें जुटा दी थी।

। परिच्छेद–तीन

और फिर एक महीना पूरा होने पर ....।

मीरा की मा स्वय इस बरामदेनुमा कमरे मे आयी थी जहा मैं मीरा को पढा रहा था और बिना कुछ कहे मेरे सामने साठ रुपये रख दिये थे। इससे पहले कि मैं कुछ कहू वह वहा से चली गयी थी।

मैंने मीरा की ओर देखा था। वह मुझसे नजरें चुरा कर मिल्टन की 'ऑन हिज ब्लाइन्डनेस' पढने का प्रयत्न करने लगी थी। मेरे हृदय के किसी कोने मे करुणा उपजी थी। किन्तु मैंने उसे बलात् हृदय से निकाल फेंका था। सोचा था, "व्यर्थ ही मोह बढाने से क्या होगा? जब धन्ना सेठ बन रहे हैं तो तुम्हे क्या? कोई मुफ्त मे तो रुपया ले नही रहे हो?"

अगले मास भी मुझे महीना पूरा होते ही साठ रुपये मिल गये थे। और जब उससे अगले माह रुपये नही मिले तो मौन रहा और उसके अगले माह मीरा की परीक्षा हो गयी। अन्तिम दिन मीरा की मा फिर आयी। मैंने सोचा शायद रुपये देने आयी हैं। लेकिन नही। एक क्षण उन्होने मीरा द्वारा रिक्त कर दी गयी कुर्सी को देखा और फिर मुझको देख कर दृष्टि झुका ली।

मैं समझ गया कि खानदानी सम्मान के नाम पर यह स्वाभिमानी स्त्री फिर कुछ झूठ बोलना चाह रही है किन्तु बोल नही पा रही है। मैंने ही बात का प्रारम्भ करना उचित समझा। मैंने कहा, "मीरा के पेपर्स बहुत अच्छे गये हैं, मा जी।"

उन्हे मीरा के पेपर्स से कुछ लेना-देना न था। कौन जाने उन्होने मेरी बात सुनी भी या नही। सम्भल पा कर बोली, आपके रुपये ....।"

"ठीक है, ठीक है।" मैंने लापरवाही प्रदर्शित करते हुए कन्धे उचकाये थे, "मैं बाद मे ले जाऊंगा।"

इसके बाद मैं उठ खडा हुआ था और न जाने क्यो क्षण भर को ठिठका था। शायद उन्होने गलत अर्थ लगाया था। वह बोली थी, "महरी ने आपका घर देखा है। मैं उसके हाथ भिजवा दूंगी।"

और मैं उन्हे अभिवादन कर शीघ्रतापूर्वक चला आया था।

× × ×

मुझे यहां बैठे-बैठे बीस मिनिट से ऊपर व्यतीत हो गये हैं। मैं अच्छी तरह बोर हो गया हूं। झल्लाहट भी आ रही है। झल्लाहट के साथ-साथ क्रोध भी आने लगा है।

मैं बड़बड़ाने लगता हूं, "बड़ी बदतमीजी है..............।"

लेकिन मेरी बड़बड़ाहट स्वयं शान्त हो जाती है।

अन्दर से मीरा की मां का स्वर फुसफुसाहट के रूप में सुनायी देता है। वह किसी से दुखित स्वर में कह रही हैं और दुख के कारण ही शायद उनका स्वर पर नियन्त्रण खो गया है। मुझे बहुत मद्धम स्वर सुनायी देता है, "उसने तो रुपये उधार देने से मना कर दिया ... ले, तू ये चूड़िया ले जा ... सत्तो सुनार के पास ... कहियो मां ने भेजी हैं और सौ रुपये मंगाए हैं ... जल्दी अइयो।"

और फिर मैं किसी की पदचाप सुनता हूं। सहसा ही मैं अपने आपको किताब में खोया हुआ प्रकट करने का प्रयत्न करने लगता हूं। मैं सोचता हूं कि यहां से चुपचाप खिसक जाऊं।

और उठने को होता ही हूं कि ठीक उसी समय मीरा की मां इस बरामदेनुमा कमरे मे प्रवेश करती है। मैं उनके हाथों को गौर से देखता हूं। उनकी कलाइयों में दो-दो के स्थान पर एक-एक ही चूड़ी है। हृदय के अन्दर कहीं मैं एक कसक-सी महसूस करता हूं।

मीरा की मां कहती है, "महरी आपका घर भूल गयी। भेजा तो उसे दो-तीन बार लेकिन ....।"

वह स्वयं ही बात अधूरी छोड़ देती है। न जाने क्यों उनके झूठ पर मुझे क्रोध नहीं तरस-सा आ रहा है। मैं कहता हूं, "मैं इसलिये तो नहीं आया। मैं तो मीरा को प्रथम श्रेणी में पास होने की बधाई देने आया हूं।"

वह शायद मेरी थोथी सफाई की निरर्थकता को समझ गयी है या उन्हें बधाई की बात सुनने का अवकाश नहीं है। उनका मस्तिष्क तो शायद सत्तो सुनार की दुकान में अटका है। वह शायद सोच रही हैं कि यदि वह दुकान पर न हुआ.... या कोई और बात हो गयी तो ... ?

कुछ खटका होता है और वह फुर्ती से अन्दर चली जाती है।

मेरा मन वहां से भाग चलने के लिये विद्रोह करने लगता है। किन्तु मैं जानता हूं कि न तो मैं वहां से भाग सकता हूं और न ही रुपये लेने से इन्कार कर सकता हूं।

मजबूरी जो है मेरे सामने।

हल्दीघाटी

• रघुनाथसिंह शेखावत

यह पवित्र भूमि जिसका रज-रज शीश पर चढ़ाने योग्य है, जिसका कण-कण आजादी का पाठ पढ़ाता है, जिसकी विशाल गिरि-शृंखलाएं दुश्मन की छाती से छाती भिड़ा देने की प्रेरणा देती है, जिस पुण्य भूमि पर बहादुरों ने अपने शीश कटा दिये मगर झुकाये नहीं—उसका नाम है हल्दीघाटी।

× × ×

नाथद्वारा के श्रीनाथजी के दर्शन करने के उपरान्त अरावली की विशाल शृंखलाओं के बीच प्रकृति द्वारा रचित अनुपम टेढ़ी मेढ़ी घाटियो को पार करते हुए हम उल्लसित मन के साथ भारत के पुण्य तीर्थस्थल हल्दीघाटी की पवित्र रज के दर्शन करने बस मे बढ़े जा रहे थे। हमारी बस घाटियों पर चढ़ती उतरती हुई, घाटियो को पार करती हुई हल्दीघाटी के मैदान मे पहुची, जिसके दर्शन करने हेतु हमारा मन उतावला हो रहा था।

विशाल और बीहड़ जगल के बीच चारों ओर से अरावली की विशाल शृंखलाओ से घिरा हुआ यह मैदान हल्दीघाटी का मैदान है। यह वही मैदान है जहां मां की इज्जत और उसकी स्वतन्त्रता हेतु हजारो बहादुरो ने अपना रक्त बहा दिया था, यह वही बलिदानी मिट्टी है जिसका हजारो बहादुरो ने तिलक किया है, यह वही अरमानी मिट्टी है जहा तलवार का धनी, आजादी का दीवाना, देश की आन व बान के लिए अनेको कष्ट झेलने वाला, दिल्ली बादशाहो के सम्मुख कभी नत न होने वाला महाराणा प्रताप अरियो के रक्त से अपनी तलवार की प्यास बुझाने के

बिगुल रणक्षेत्र मे कूद पड़ा था। यह वही घाटी है जहां प्रसिद्ध इतिहास-कार कर्नल जेम्स टॉड ने आंसू बहा दिये थे और उसने इस घाटी को 'थर्मा-पाली' के नाम से पुकारा था तथा महाराणा प्रताप को 'लियोनिडास' की संज्ञा दी थी।

"दर्शक मौन क्यों खड़े हो ? आगे बढ़ो और देखो बहादुर झाला मन्ना पर बनी समाधि को।" गिरि शृंखलाओं की मूक आवाज मुझे सुनाई दी। झाला मन्ना का नाम सुनते ही मेरी मुद्रा एकदम गम्भीर हो गई और आंखों से आंसू टपकने लगे। यही वह झाला मन्ना था जिसके बलिदान पर ही महाराणा प्रताप का इतिहास खड़ा है, जिसके बलिदान पर हम भारतवासी आज गौरव करते हैं। सामने खड़ी छतरी को देखकर मुख से आवाज निकल पड़ी— देश-भक्त की रक्षार्थ अपने प्राणों को कुरबान करने वाले झाला मन्ना तुझे मेरा नमस्कार ! नमस्कार !!"

झाला की समाधि से एक मूक आवाज मुझे सुनायी दी—"धन्य दर्शक ! तुझे सौ बार धन्य है। मेरे दर्शन मात्र से तुम्हारे हृदय में इतने विचार आये इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। मैं जानता हूं तुम्हें मेरा इतिहास पता है और तुम्हें पूर्वजों के बलिदान पर गौरव है, तो लो मेरा एक छोटा सा सन्देश सुनते जाओ।"मेरी आंखें भीगी थी और समाधि अपना सन्देश सुनाये जा रही थी –"सुनो और ध्यान देकर सुनो, मां मातृभूमि की रक्षा अपने प्राण निछावर करके भी करना। पथिक, यह शरीर क्षणभंगुर है, देश के हित मर जाने से बढ़कर इस शरीर का कोई उपयोग नहीं है। तुम्हारे कुल ने आदि-काल से ही देश की रक्षार्थ अपने को कुरबान किया है, इसका तुम्हें गौरव होना चाहिए।"

मैं, सम्मुख दिख रही छोटी सी तलैया की ओर बढ़ा तो मानो तलैया अपनी मूक वाणी में मुझे कहने लगी—"दर्शक ! बहादुरों के युद्ध की गाथा मेरे से सुन लो। राणा का चेतक मानसिंह के हाथी पर मेरे ही पास चढ़ा था, राणा प्रताप के भयंकर भाले को महावत की छाती के बीच चलते हुए मैंने देखा था तथा उस समय बहादुरों के खून से जो नदियां बह चली थीं, उन सब का संगम मेरे ही यहाँ हुआ था, देश पर मर मिटने वाले रण-बांकुरों के रक्त से मैं लबालब भर गया था, इसी कारण तो मेरा नाम रक्त तलाई है।"

मेरी आंखें पानी से डब-डब कर रही थीं, मैंने रक्त तलाई से मौन विदाई ली और करीब डेढ़ मील का पहाड़ी मार्ग पार कर शाही बाग

मे पहुंचा । यही वह स्थान है जहा मानसिंह ने डेरे डाले थे और यहीं मान-सिंह ने आजादी के दीवाने प्रताप से लोहा लेने का रण-साज सजाया था। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर मैं उस स्थान पर पहुचा जहा राणा के भाई शक्ति सिंह ने प्रताप का पीछा करने वाले दो मुगलों को मौत के घाट उतारा था और यही से शक्तिसिंह ने 'ओ ! रुक जा, नीला घोड़ा रा असवार' की ओजस्वी आवाज लगाई थी । कुछ आगे बढ़ने पर एक नाले के पास आकर मैं मौन खड़ा रहा ।

"पथिक, क्या देखते हो ? मैं वही नाला हूं जिसको चेतक ने एक ही छलाग में पार कर लिया था । मा-मेवाड़ का प्रेम होते हुए भी एक देशभक्त बहादुर के सामने मैं भारी विपत्ति के रूप मे आया । वर्षा का पराया जोर पाकर मैं इतरा गया था, परन्तु धन्य है उस चेतक को, जिसका नाम लेते ही स्वामिभक्ति की याद आ जाती है अपनी जान की परवाह न करते हुए सैंकड़ों घाव लगे होने पर भी स्वामी की रक्षार्थ एक ही छलाग मे मुझे लाघ गया और मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया । जिस दिन चेतन ने मुझे लाघा, उसी दिन से मैं चेतक नाले नाम से प्रसिद्ध हो गया।" चेतक नाले ने मूक भाषा मे मुझे अपनी कहानी बतायी । ४० फीट चौड़े भयकर नाले को चेतक ने कैसे पार किया होगा ? मेरे सामने प्रश्नवाचक चिन्ह था । चेतक नाला मानो मुझे ओजस्वी वाणी मे कहने लगा—"दर्शक ! वह जमाना आज जैसा नही था । सिर कटने पर भी अनेकों अरियों को मौत के घाट उतारने वाले वीर इस पुण्य-भूमि पर पैदा होते आये हैं । आज तुम बड़ी-बड़ी बातें बना सकते हो, डींग हाक सकते हो, पर मेहनत से जी चुराते हो और लम्बी तान कर सोना ही तुम्हे पसन्द है। चेतक एक पशु था, परन्तु वह बड़ा बहादुर था, उसकी रग-रग में मा का प्यार भरा था, घायल अवस्था मे भी उसने राणा की अद्भुत सेवा की, पशु होते हुए भी अरि के सम्मुख कभी नही झुका और उसी के कारण तो राणा का मस्तक हमेशा ऊचा रहा । देश की शान, राणा की आन और मां के प्यार पर वह अपने प्राणों को तुच्छ समझता था और इसी जोश मे वह मुझे लाघ गया था ।"

"फिर क्या हुआ ?"—मैंने पूछा । "हुआ क्या ? मेरे देखते-देखते ही थोड़ी दूर आगे बढ़कर वह वीर चेतक जो राणा का इस भारी सकट मे एकमात्र सहारा था, जिसकी अभी बहुत जरूरत थी, परलोक चला गया । राणा प्रताप की आखें डबडबा गई और अश्रुधारा बह चली ।

पथिक, यह करुण दृश्य मैंने अपनी आंखों से देखा था।"

मैंने भीगी आँखों से चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और चेतक नाले के पास मूक खड़ा रहा। मेरे हृदय में एक अजीब शक्ति मुझे सन्देश दे रही थी, "दर्शक! बहादुरों की हर युग में कदर होती है, जीवन चला जाता है, लोग कुत्ते की मौत मर जाते हैं, पर वे बहादुर जिनमें मातृभूमि का प्यार भरा है, जो अपने देश को प्राणों से प्यारा समझते हैं, वे बहादुर दुश्मन से छाती से छाती अड़ाकर देश की आन बान के लिए, मातृभूमि की पवित्र रज को अरियों के अपवित्र पैरों से बचाने के लिए अपनी कुर-बानी दे देते हैं, उन बहादुरों की याद हमेशा बनी रहती है।"

चेतक नाले का पूरा निरीक्षण करने के पश्चात मेरे कदम चेतक समाधि की ओर बढ़ चले। चेतक समाधि के निकट पहुंचा ही था कि अश्रुओं की गति और तेज हो गई। मैं कुछ देर मौन खड़ा समाधि की ओर एकटक देखता रहा और मानो समाधि भी मौन खड़ी मेरी ओर देख रही थी। मैंने पूछा, "तुम मौन क्यों हो? इस बीहड़ जंगल में तुम उदासीन-सी कैसे खड़ी हो, क्या कुछ सन्देश इस तुच्छ प्राणी को नहीं दोगी?" समाधि अब भी मौन थी, पर कुछ सिसकी जरूर। मैंने कहा, "समाधि, बोलो तुम अवश्य बोलो, तुम्हें लज्जा क्यों आ रही है?"

समाधि मूक भाषा में बोल उठी, "दर्शक तुम केवल मुझे देखने के लिए आये हो, बस! देख चुके मेरे ऊपरी आवरण को, अब चले जाओ।" "नहीं! नहीं!! मैं तुम्हारी पूरी बात सुने बिना एक कदम भी नहीं हिलूंगा"—मैंने साहस के साथ कहा। "मेरी बात को तुम क्या सुनोगे पथिक! आज के इस युग में देश पर मर मिटने वाले बहादुरों की यही इज्जत है! अरि के संग लड़ने वाले और मातृभूमि पर शीश कटाने वाले वीर आज मूर्ख कहे जाते हैं और जो रणभूमि से प्राण बचाकर कायर की तरह छुप कर भाग आते हैं वे चतुर!" समाधि की मूक भाषा मेरे हृदय में एक नयी शक्ति का सञ्चार कर रही थी। मैंने आगे सुना—"पथिक! इस युग में मानव की कीमत उसके गुणों से नहीं धन से आंकी जाती है। धनवान स्वयं भगवान् का अवतार समझा जाता है, मानव जाति का सिरमौर कहलाता है, उसके हजारों अवगुण धन के नीचे दब जाते हैं, उसे रईस की पदवी दी जाती है। गरीब मजदूरों का खून चूसने वाले धनपतियों को तकदीर का खेल बताया जाता है, पापी पति की व्यभिचा-रिणी पत्नी के मर जाने पर लोग कहते हैं—विमान आया था और उसे

स्वर्ग ले गया तथा उसे सती-साध्वी की पदवी से विभूपित कर उस पर बडे बडे मन्दिरों का निर्माण कर दिया जाता है तथा करोड़ों व्यक्ति उसकी पूजा करते हैं। यह है पैसे का जमाना और झूठा आडम्बर। मैं एक छोटी-सी समाधि हूं, धनी व्यक्तियों की सतियों पर बनी विशाल समाधि के समान तो मुझे कौन बना सकता है? फिर भी इस बीहड़ जगल मे खडी रात और दिन स्वामिभक्त चेतक व वीर केसरी राणा के साथ-साथ देश पर कुरबान होने वाले बहादुरो की गाथा कहती रहती हूं। पर उन बहादुरो की गाथा कौन सुनता है? पथिक! लोग आते है और मेरे बाहरी आवरण को देखकर चले जाते हैं, मेरे अन्त:स्थल की पुकार को कौन सुनता है? तुमने मेरी मूक भाषा को समझा है, मेरे हृदय की आवाज को जाना है, इसलिए मैंने छोटी-सी गाथा तुमसे कही है। अब पथिक, तुम जाओ और हो सके तो वीर पुत्रो को कहो कि जब वे यहा आयें तो मेरी मूक भाषा को समझें, मा को प्यार करें और अन्त समय तक प्राण निछावर करके भी माँ की लाज रखे। बस पथिक मेरा यही अन्तिम सन्देश है।"

समाधि से आ रही मूक भाषा एकदम रुक गई। मैं मौन खडा समाधि की ओर कुछ देर तक एकटक देखता रहा। श्रद्धा से मेरा मस्तक झुक गया और मेरी गीली आखों से दो आसू समाधि पर टपक पडे।

ममता का तटबन्ध

• रामनिवास शर्मा

यह कसक यह वेदना, अमह पीडा-सी बढ़ती जाती है। रिसते घाव-सी गहरी से गहरी होती जा रही है। भुलाना चाहने पर भूली नहीं जाती है। याद न करने पर भी स्मरण शक्ति के दरवाजे पर वह बार-बार दस्तक दे जाती है। धीरे-धीरे ठहर ठहर कर। अनजाने राही की तरह बार-बार लौटती है। जाने-पहचाने का अभिनय करती है। मैं ज्यो-ज्यो याददाश्त के द्वार बन्द करती वह त्यो त्यो उसे पार करके नजदीक आती जाती है। जब वह बिल्कुल पास आ जाती है तब मैं भय से कांप उठती हूँ सिहर उठती हूँ। अनायास ही चीख पडती हू। सब सोचते हैं यह क्या हो गया ? वे भी सोचते हैं। पास आकर बैठते ही सिर पर हाथ फेरते हैं। बेचैन स्वरो में पूछते हैं, "कुन्तु तुम्हे यह क्या हो गया ?" ललाट पर पसीने की बूंदें तैरने लगती हैं। जेब से रूमाल निकाल कर मेरा चेहरा पोंछते है। जब वे अपना हाथ मेरे चेहरे पर फेरते हैं तब शान्ति महसूस होती है।

जब मैं उन्हे देखती हू तो मन मे घृणा उठती है, नफरत होती है। जी चाहता है कभी उनका मुह नहीं देखू। पर जब वह शाम को थका-हारा मासूम सा चेहरा लेकर लौटते हैं और धीरे से दबी जबान मे पूछते हैं कि "तबियत कैसी है ?" तो घृणा बहने लगती है, नफरत ढह जाती है। जी चाहने लगता है इनके कदम चूम लूं। पाप-पुण्य, सत्य-असत्य की व्याख्या खोल दू। महाभारत की पुनरावृत्ति कर दू। लेकिन बातें जबान पर आते-आते रुक जाती हैं। भविष्य की जटिलताओ के अनुमान से ही जुबान रुकने लगती है, कांपने लगती है। उसमे एक तनाव आने लगता है। जी घबरा उठता है। आंखें खुली की खुली रह जाती हैं। विस्फारित आंखें उनके चेहरे पर टिकी रहती हैं। हटती ही नहीं, भीख

मांगती हैं, प्यार की। धोखे की क्षमा मांगती हूँ। जब धीरे से वे कहते हैं, "इस तरह से क्या देख रही हो ?' तब मैं करवट बदल लेती हूं। वे अपने मुलायम हाथों से मेरी पीठ को सहलाने लगते हैं। सुख की अनुभूति होने लगती है। मन में यह इच्छा बनी रहती है कि वे इसी तरह हाथ फेरते रहें और मैं लेटी रहूं।

भ्रूण धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। जो काम महीने में होता है वह मेरे लिये दिनों में होता जा रहा है। वह लम्बा समय जो औरतों को बहुत ही मुश्किल से आता है, मुझे जल्दी ही आने लगा। चेहरे पर पीलापन झलकने लगा। शरीर में सुस्ती की लहर-सी दौड़ने लगी। उठने में परेशानी होने लगी। अलसाई आखें खोजने लगती हैं किसी को, ताकि पास में बैठकर बदन को सहला सके। बढ़ती हुई बेचैनी की प्यास लम्बी होती जाती है। जी चाहता है कि बाहें डाल कर सोई रहूं। आखें खोलने की हिम्मत नहीं रहती। वे उसी तरह बन्द, बन्द रहना चाहती हैं, सुस्ती से, मदहोशी से।

पर वह भ्रूण भी कभी-कभी बेवक्त प्यार से और कभी घृणा से दर्द करने लगता है। और कभी उनका हाथ लगते ही सारे शरीर में सिहरन दौड़ जाती है, वैधव्य सी, विराग-सी। घृणा से होंठ भारी हो जाते हैं, सूखने लगते हैं। जबान लड़खड़ाने लगती है। कहने को बहुत सारी बातें हैं पर नयनों की विपरीत गति इन सबको रोकती है। आखों के कोनों से निकलता पानी कपोलों पर ढरकने लगता है। गर्दन झुक जाती है। सुस्त होकर गिर पड़ती हूं। न जाने कब नींद आ जाती है। सारे घाव बिखर जाते हैं तारों की तरह।

× × ×

बढ़ता हुआ भ्रूण प्यार देता, घृणा देता। जी में मिचलाहट पैदा करता। परायों से प्यार अपनों से घृणा, दोनों का ही अविरल क्रम चलता। और जब पाप और पुण्य दोनों एक साथ मिलते तो जी चाहता फांसी खा लूं, आत्महत्या कर लूं। घृणा से दोनों के चेहरों पर थूकूं। नफरत से मुंह फेर लूं। मैं बेचैन हो उठती। कोई बहाना लेकर छत पर आ जाती। आखें बन्द कर लेट जाती और न जाने कब नींद आ जाती।

समय की ठेकरी ने असमय ही अपना काम किया। शेफाली-सा शिशु बाहर आया। अब वह टुकुर-टुकुर मेरी ओर देखता और बिना इशारे

के हो हम पड़ना तो प्यार करने की इच्छा होती। आंचल छलक पड़ता है। मैं उसे छाती से चिपका लेती हूं। एक स्तन उसके मुंह में देती हूं। दूसरे पर वह हाथ रख लेता है। मैं उसका चुम्बन लेने लगती हूं। वह दूध न पीकर हंसने लगता है। मेरा मातृत्व धन्य हो जाता है। मेरी तमन्ना रहती है कि मैं अपने जीवन भर इसी तरह इसे प्यार देती रहूं, प्यार करती रहूं। दूध से ब्लाउज खराब हो जाता है। जब वह अपना हाथ मेरे मुंह पर फेरता है तब सब कुछ भूल जाती हूं, यहां तक कि अपने को भी।

कभी कभी वह इतने जोर से रोता है कि घर को अपने सर पर उठा लेता है। मैं भूल जाती हूं कि यह मेरा आत्मज है। इससे घृणा होने लगती है। यह वही है जिसके लिये मैं बेचैन थी। सब कुछ किया। अगर इससे यह सब नहीं हो तो मुझे क्या ? वह करना पड़ता जो कोई औरत नहीं करती है। मेरा ढहता हुआ विश्वास किसी को खोजने लगता है। वे धीरे-धीरे कहते हैं 'लाओ बच्चे को मुझे देओ, मैं इसे राजी करूं, चुप करा दूं।' दिल में उठती हूक इस चोट से भयंकर हो उठती है। मैं उठकर भागना चाहती हूं। दूर बहुत दूर जहां इसकी इसके बाप की छाया भी मेरे तन पर न पड़ सके। मेरे होंठ फड़फड़ाने लगते हैं। मेरे होंठों से निकली आवाज उन तक पहुंचती है या नहीं मुझे नहीं मालूम, पर मेरे कानों के पर्दों से टकराकर मुझे झकझोर देती है। मैं बेरहमी से उसे पीटना चाहती हूं। मेरी घृणा उफन पड़ती है। तब तक वह उनकी गोद में सो जाता है।

नींद में जब वह हाथ मारता हुआ मुझे खोजता है तब मुझे क्रोध भी आता है, स्नेह भी। उससे दूर भी जाना चाहती हूं और नजदीक भी। हम कर मैं उसे छाती से लगा लेती हूं। पूरे जोर से जब वह दूध पीने लगता है तो मुझे यह महसूस होता है कि मेरी आत्मा मेरे शरीर से निकल कर उसके शरीर में खिसक रही है। मैं मेरा अस्तित्व मुझसे अलग होकर, वह उसमें बन जाता है। मैं सुध-बुध खोकर उसमें लवलीन हो जाती हूं।

मेरा यह अभिनय मुझे कब तक और करना है ? मैं कहना चाहती हूं खुलकर, जी खोलकर पर किसे कहूं ? कौन सुने ? और यह मासूम बच्चा मेरी बेरहमी पर मुझे रुलायेगा, हंसायेगा। फुटपाथ पर चलते हुये श्रोता तो बहुत से हैं पर वे सब तोते हैं। सबोधन के दो शब्द उनकी जबान पर जड़े रहते हैं जो अनायास ही निकल पड़ते हैं। किसी की असफलता पर, मौत पर।

राजस्थानी गीतों में भारतीय नारी का आत्म-समर्पण

• बसंती लाल महात्मा

भारतीय नारी सृष्टि के प्रारंभ से अनन्त गुणों की आगार रही है। पृथ्वी की सी क्षमा, सूर्य जैसा तेज, समुद्र की सी गंभीरता, चन्द्रमा जैसी शीतलता, पर्वतों की सी मानसिक उच्चता एक साथ भारतीय नारी के चरित्र में दृष्टिगोचर होती हैं। वह दया, क्षमा, ममता और प्रेम की मूर्ति है। साथ ही अवसर पड़ जाने पर वह साक्षात् रण-चंडी का रूप भी धारण कर लेती है। वह माता के समान हमारी रक्षा करती है, मित्र और गुरु के समान हमें शुभ कार्यों के लिए प्रेरित करती है। बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त वह हमारी संरक्षिका बनी रहती है। भारतीय नारी का त्याग और बलिदान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। ऐसी ही श्रद्धामयी नारी के विषय में महाकवि प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य कामायनी में अभिव्यक्त किया है —

> नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग तल में।
> पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में ॥

ऐसी ही श्रद्धामयी भारतीय नारी की सबसे बड़ी विशेषता है उसका आत्म-समर्पण। भारतीय नारी का यह आत्मसमर्पण इतना उच्च है कि यदि वह स्वप्न में भी किसी पुरुष से प्रेम करने लगती है तो वास्तविक जीवन में भी उसी पुरुष को अपना ही कर लेती है। भारतीय नारी पर-पुरुष से प्रेम करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकती है। भारतीय विवाह-संस्कार की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि अग्नि की साक्षी में सप्त पदी के समय वर के दुपट्टे और वधू की चूनड़ी में जो गांठ

जब कभी वह उनकी अनुपस्थिति मे घर आ जाता है तो दिल धडकने लगता है। ललाट पर मायूसी की हल्की छाया छा जाती है। शरीर पसीने से तर हो जाता है। जबान लडखडाने लगती है। वह कहता है कि मेरे प्यार का पुरस्कार ? मेरे कान के पर्दे बेरहमी से उठने गिरने लगते है। आखो मे एक योजना की लहर छा जाती है। धडकन खिडकियों से टकराने लगती है और जबान बेरहमी से हिल उठती है कि मुझसे यह न होगा। जब वह आगे बढता है तो मन भागना चाहता है पर पैर हिलते ही नही, अगद की तरह जमीन पर जम जाते हैं। वही गिर पडती हू। एक आध चूडी झड़ जाती है। वह चुपचाप बाहर का फाटक बन्द करके चला जाता है। जब होश आता है तो कमरे मे बढते हुये परिचित कदमो की आहट सुनाई देती है एक सहारा लेकर जिसके सहारे मैं जी सकूं।

बढती रात मे वे धीरे से पूछते हैं कि तबियत कैसी है तो अहम् फुकार उठता है। उनके हाथ से बेरी के से असख्य शूल एक साथ चुभते है। मन मे इच्छा होती है कि वे बोलें नही। कभी भी नही। मैं इसी तरह यों ही पडी रहूं। उनके हाथ को छिटक देती हूँ। वेदना की एक लहर-सी ऊपर उठने लगती है और मैं उसी मे सो जाना चाहती हूं सदा के लिये। अपने लिये, उनके लिये, सब के लिये। बच्चे को छाती से चिपका लेती हूँ, एक रक्षक की तरह, धोखे की तरह। पर यह भुलावा चलता नही। मन मे ऐंठन होने लगती है, जडता बढ़ती जाती है।

राजस्थानी गीतों में भारतीय नारी का आत्म-समर्पण

• बसंती लाल महात्मा

भारतीय नारी सृष्टि के प्रारंभ से अनन्त गुणों की आगार रही है। पृथ्वी की सी क्षमा, सूर्य जैसा तेज, समुद्र की सी गंभीरता, चन्द्रमा जैसी शीतलता, पर्वतों की सी मानसिक उच्चता एक साथ भारतीय नारी के चरित्र में दृष्टिगोचर होती है। वह दया, क्षमा, ममता और प्रेम की मूर्ति है। साथ ही अवसर पड़ जाने पर वह साक्षात् रण-चंडी का रूप भी धारण कर लेती है। वह माता के समान हमारी रक्षा करती है, मित्र और गुरु के समान हमें शुभ कार्यों के लिए प्रेरित करती है। बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त वह हमारी संरक्षिका बनी रहती है। भारतीय नारी का त्याग और बलिदान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। ऐसी ही श्रद्धामयी नारी के विषय में महाकवि प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य कामायनी में अभिव्यक्त किया है —

> नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग तल में।
> पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में ।।

ऐसी ही श्रद्धामयी भारतीय नारी की सबसे बड़ी विशेषता है उसका आत्म-समर्पण। भारतीय नारी का यह आत्म समर्पण इतना उच्च है कि यदि वह स्वप्न में भी किसी पुरुष से प्रेम करने लगती है तो वास्तविक जीवन में भी उसी पुरुष को अपना ही कर लेती है। भारतीय नारी पर-पुरुष से प्रेम करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकती है। भारतीय विवाह-संस्कार की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि अग्नि की साक्षी में सप्त पदी के समय वर के दुपट्टे और वधू की चूनड़ी में जो गाठें

लगती है वे दो हृदयों के मिलन का प्रतीक बन जाती है। इसी तथ्य को अब्दुर्रहीम खानखाना ने अपने एक दोहे में बड़े सुन्दर ढग से अभिव्यक्त किया है—

> जहां गांठ तह रस नहि, यह जानत सब कोई।
> मडप तर की गांठि में, गांठि गांठि रस होई॥

जहां गांठे होती है वहां वस्तुत. रस अर्थात् प्रेम की कोई सभावना नही है। यह तथ्य गन्ने के साथ और मानव-जीवन मे स्पष्ट पाया जाता है पर मडप के तले वर के दुपट्टे और वधू की चूनडी मे जो गांठे लगती है उनमे रस ही रस है। अर्थात् उन गाठो के लगने के बाद ही जिस दाम्पत्य-प्रेम का प्रादुर्भाव होता है वह अगाध और अक्षुण्ण होता है।

पाश्चात्य देशो मे पहले प्रेम-प्रदर्शन का प्रारम्भ होता है और फिर विवाह। इसके ठीक विपरीत भारत मे पहले विवाह होता है और तत्पश्चात् प्रेम का प्रारम्भ होता है। यही कारण है कि भारतीय नारी विवाह-सस्कार के समय ही अपने पति को पूर्ण आत्म-समर्पण कर देती है।

इसी आत्म-समर्पण का मधुर गान भारतीय नारी ने राजस्थानी गीतो मे मुखरित होकर किया है। जिस प्रकार ऋतुराज बसत के आने पर कोयले अपने पचम स्वर मे स्वयमेव कूक उठती हैं उसी प्रकार प्रत्येक मागलिक अवसर पर राजस्थानी नारियां अपने मधुर स्वरो मे गीतो को गाती हैं। इन गीतों में नारियो ने अपनी आकाक्षाओ को विविध भांति से प्रकट किया है। विशेषतः उन गीतों को, जिनमे उनका आत्म-समर्पण मुखरित होता है, सरेआम बाजारो में गाती हुई निकलती हैं। पर हम बीसवी सदी के आधुनिकतम कहलाने के दभ मे उन गीतो की भावनाओ की रक्षा करना तो दूर रहा, सुनना भी पसन्द नही करते। वास्तव मे इन गीतो मे नारी ने अपनी उच्च भावनाओ, आकाक्षाओ एव उपालभो का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है।

अब यह देखना है कि राजस्थानी गीतो मे भारतीय नारी ने किस प्रकार अपनी आत्म-समर्पण की भावना को साकार रूप दिया है। जिस प्रकार दूध से उत्पन्न मलाई (थर) पुनः दूध मे विलीन नही हो सकती है उसी प्रकार माता-पिता से उत्पन्न पुत्री भी उनके घर पर नही रह सकती

है। उनका पूर्ण अस्तित्व तो उनके पति पर ही आश्रित होता है। इसी आत्म समर्पण के प्रथम मधुर भाव को वे यों अभिव्यक्त करती है —

> दूधा तो भरियो वाटको जी काइ
> दर आवे धर जाय, भवर सा धर आवे धर जाय।
> घणी पियारी माग माय बाप री,
> पियू बिन रह्यो य न जाय ॥

यद्यपि मैं अपने माता-पिता को बहुत प्यारी हू तथापि पति के बिना नही रहा जा सकता है। इसी मधुर भाव को महाकवि श्री तुलसीदास जी ने सती सीता से रामचरित मानस मे निम्नलिखित ढग से कहलाया है —

> जिय बिनु देह नदी बिनु बारी,
> तैसे ही नाथ पति बिनु नारी।

वास्तव मे भारतीय नारी के लिए पति ही सब कुछ है। वह उनसे दूर रहना भी नही चाहती है क्योकि वह यह समझती है कि शादी के पश्चात् मैं और मेरे पतिदेव दो देह धारण करते हुए भी हम आत्मा से एकाकार हो गये है। प्रणय की ऐसी ही एकाकार स्थिति आत्म-समर्पण कही जा सकती है। इसी दूसरे मधुर भाव को नारी ने इस प्रकार प्रकट किया है —

> भवर माने दूरी मत राखो,
> भवर माने दूरी मत राखो।
> मै हू दासी रावरी जी काइ
> हीवडे ही राखो ॥
> माय बाप तो मोटी करने,
> कर दीनी तुम साथ, भवर सा कर दीनी तुम साथ
> दुख देवो अथवा सुख देवो
> हो माथा रा नाथ ॥ भवर माने दूरी मत ·······

हे नाथ ! आप मुझे अपने से दूर मत रखिये और अपने हृदय मे ही इस रावरी (आपकी दासी) को स्थान दीजिये। माता-पिता ने तो अपना कर्तव्य पालन करते हुए मुझे बड़ी करके आपके साथ कर दिया है।

अब चाहे आप मुझे दुःख दें अथवा सुख—यह आपका काम है क्योंकि आप मेरे हृदय के स्वामी हैं। परन्तु आप मुझे अपने से दूर मत कीजिये। आखिर पुरुष को पुरुषार्थ करने के निमित्त बाहर जाना भी पड़ता है। वह केवल अपनी पत्नी के साथ घर में हमेशा बैठा नहीं रह सकता है। आ-जीविकोपार्जन हेतु उसे बाहर जाना ही पड़ता है। उसकी पत्नी को भी इस प्रकार के गमन का विरोध नहीं है। विरोध है तो एकमात्र बिछोह का। इसी तीसरे माधुर्य भाव को नारी ने अपने गीत में यों गाया है.—

साजन चाल्या नौकरी जी काइ,
कांधे धरी रे बदूक, भवर सा कांधे धरी बदूक
केलो मारा ले चल्यो जी काइ
के कर दो दो टूक ॥

पतिदेव कधे पर बदूक धरकर नौकरी पर जा रहे हैं। अत वह प्रार्थना करती है कि या तो उसके पतिदेव उसे भी साथ लेते चलें अन्यथा उसके दो टुकड़े कर दें। वास्तव मे वह वियोग को असह्य मानते हुए इस प्रकार मारे जाना अथवा आत्म-हत्या जैसे जघन्य पाप को करने तक प्रस्तुत हो जाती है। इसी चौथे असह्य भाव को वह इस प्रकार गा उठती है—

चादा थारी चादणी जी काइ,
सूती पिलग विछाय।
जब जागू जब एकली जी काइ,
मरू कटारी खाय ॥

इसके विपरीत वह सयोग (मिलन) को अपने जीवन का अनिर्वचनीय सुख मानती है। इसी पाचवें सयोग-सुख को वह लज्जा को भी ताक मे रखकर निस्सकोच भाव से बोल उठती है.—

चादा थारी चादणी जी काइ,
सूती पिलग विछाय।
जब जागू जब दो जणा जी काइ,
यो सुख कह्यो य नू जाय ॥

यही नही वह अपने पति के किंचित् दुःख को भी किसी प्रकार

सहन नहीं कर सकती है। ज्येष्ठ मास मे भीषण गर्मी पड रही है। इस प्रकार की भीषण गर्मी मे प्राणि-मात्र का व्याकुल होना स्वाभाविक है। फिर भी वह धूप मे निवेदन करती है —

तावडा धीमो सो पड जे रे,
तावडा मधरो सो पड जे।
सैन भवर सा रो जिव घबरावे
छाया तो कर जे॥

इसी प्रकार उसके पति के भवन या उपवन का चम्पा वृक्ष सूख रहा है। अत वह बिजली एव बादली जैसी अपनी प्रिय सखियो से प्रार्थना करती है —

बीजली चमके क्यू नी ए,
बादली बरसे क्यू नी ए,
सैल भवर सा रा हवा महल मे
चम्पो सूखे रे॥

उपर्युक्त से पाठक यह न समझ लें कि भारतीय नारी का यह आत्म-समर्पण एकागी है। वह अपने पति से भी यही अपेक्षा करती है कि जिस प्रकार उसने आत्म-समर्पण किया है उसी प्रकार का आत्म-समर्पण उसके पतिदेव भी करें। वह पुरुषो की भ्रमर-प्रवृत्ति से भली प्रकार परिचित है। जिस प्रकार भ्रमर एक पुष्प के रस-पान से सतुष्ट नही होता वैसे ही पुरुष भी एक नारी के प्रेम से सतुष्ट नहीं होता है। इसी उपालभ के प्रथम भाव को वह यो स्पष्ट करती है:—

चडी ने चावरिया भावे,
बनी ने घेवरिया भावे।
घणी सरूपी नार भवर सा ने
पर नारी भावे॥

जिस प्रकार चिडियो को चावल और नव-वधू को घेवर जैसी मिठाई अच्छी लगती है उसी प्रकार पत्नी के अत्यत स्वरूपवान होते हुए भी पति देव को दूसरो की पत्नियाँ ही अच्छी लगती है।

यही नही निम्नलिखित अन्योक्ति द्वारा उसने अपनी सास से अपने

पतिदेव की इस भ्रमर-प्रवृत्ति की शिकायत बड़ी निर्भीकता और स्पष्टता से की है:—

> घर चंपो घर मोगरो जी काइ,
> पर घर चूंटन जाय।
> वरजो नी सासू सूत ने जी कांइ,
> कदियक जोखम खाय॥

इतना जानते हुए भी वह अपने कपटी मन के पति को अपरिहार्य मानते हुए स्पष्ट शब्दों में उद्घोषणा करती है—

> तावो वे तो ताय लूं जी कांइ,
> पीतर लेऊ बदलाय।
> कपटी मन रा सायबा जी काइ,
> कीतर लेऊ बदलाय॥

तावा हो तो उसके दोष या वाकपन को तपा कर ठीक कर लिया जावे। इसी प्रकार पीतल के खराब बर्तनों को नये और अच्छे बर्तनों के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। परन्तु मेरे पतिदेव कपटी मन वाले हैं तो भी उनको किस प्रकार परिवर्तन करू ? अर्थात् उनका परिवर्तन अब किसी प्रकार संभव नहीं है क्योंकि पतिदेव कोई तावे अथवा पीतल के बर्तन के समान थोड़े ही हैं जिन्हें परिवर्तन करना संभवतया बहुत सरल है।

भारतीय नारी की ऐसी ही पावन आत्म-समर्पण की भावना ने भारत जैसे महान देश में तलाक (Divorce) जैसी घृणित प्रथा को नहीं पनपने दिया। यही कारण है कि भारत में पाश्चात्य देशों की अपेक्षा दाम्पत्य जीवन कहीं अधिक सुखी एवं स्थायी है। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में, जहां तलाक प्रथा प्रचलित है, दाम्पत्य जीवन बहुत अधिक अस्थायी एवं दुखी है। भारतीय नारी की इसी आत्म-समर्पण की भावना ने अपने पति के वियोग को असह्य दुःख मानने को प्रेरित किया है। वियोग सहने की अपेक्षा वह मर कर भी अपने पति का स्पर्श पाकर आनन्द विभोर हो जाना चाहती है। इसी सुन्दर एवं मार्मिक भावना को मलिक मोहम्मद जायसी ने अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में नागमती के विरह वर्णन में उसके अभिव्यक्त करवाया है—

> यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
> मकु तेहि मारग होइ परौं, कंत धरै जहं पाव॥

इस प्रकार एक भारतीय नारी मरने के पश्चात् भी अपनी राख में अपने प्रियतम के चरणों के स्पर्श में अलौकिक आनन्द का अनुभव करती है।

इसी आत्म-समर्पण की भावना ने भारतीय नारी को जौहर की ज्वाला में भी महान शीतलता का अनुभव कराया है। इसी पवित्र भावना ने उसे अपने पति को कर्तव्य-च्युत न होने देने के लिये अपने ही हाथ से अपना सिर काटकर प्रेम की अमर निशानी के रूप में अर्पित करने की प्रेरणा दी है। इसी तादात्म्य स्थिति ने भारतीय नारी को सती होने में महान गौरव का अनुभव कराया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह आत्म-समर्पण जौहर या सतीत्व की ज्वाला में धधकते हुए भी अमरत्व को प्राप्त हो गया है। भारतीय नारी की ऐसी ही अमरत्व प्राप्त करने की भावना का राजस्थानी कवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपनी 'वीर सतसई' में बड़ी ओजपूर्ण भाषा में चित्रात्मक शैली द्वारा दिग्दर्शन कराया है —

> नायण आज न मांड पग, काळ सुणीजे जग।
> धारा लागा जे धणी, तो दीजे घण रग॥

कोई तीज-त्यौहार है। नाइन राजपूत युवती के पैरों में महावर लगाने आई है। वह युवती यह कहकर मना कर रही है कि, "हे नाइन आज तू मेरे पैरों में मेंहदी मत लगा क्योंकि सुना है कल युद्ध होने वाला है। मेरे पतिदेव धारा तीर्थ में स्नान करेंगे अर्थात् युद्ध भूमि में वीरता से लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त करेंगे और ऐसी परिस्थिति में मुझे सोलह शृंगार, सती होने के लिए करने ही पड़ेंगे। अतः तू कल ही मेरे महावर लगाकर मेरे सोलह शृंगार सजाना।"

यह है भारतीय नारी का आत्म-समर्पण जो आज भी विश्व के रंग-मंच पर अपनी पूर्ण ज्योत्स्ना से जगमगा रहा है। इसी आत्म-समर्पण को उसने राजस्थानी गीतों के बोल में —

(१) सुख देवो अथवा दुख देवो,
हो माथा रा नाथ।

(२) कंतो लारा ले चलो जी काइ,
के कर दो दो टूक।

हिन्दी सन्त-काव्य : आज के सन्दर्भ में

• कञ्चन लता

ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी तक बौद्ध-धर्म पूर्णरूपेण विकृत हो चुका था। उसने वज्रयान का तंत्रवादी स्वरूप ले लिया था। तारा-कृत्या आदि की पूजा करके ये तांत्रिक योगी अवतारवादी हो गये थे। ब्राह्मणों के धर्माडम्बरों और अन्ध विश्वासों का उन पर पूरा प्रभाव था। इसी समय कुछ ऐसे महात्माओं का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने अपनी साधना के बल पर धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति की। पंडितों की भाषा संस्कृत और पाली को छोड़ कर उन्होंने तत्कालीन जन भाषा अपभ्रंश में अपनी वाणी मुखरित की। ये महात्मा थे आदि-कवि सरहपा, लूहिपा, कण्हपा, कुक्कुरिपा आदि।

अशिक्षित होने के कारण इनकी वाणी रहस्यात्मक व अटपटी बनी जिसका अर्थ आध्यात्मिक है। यद्यपि इन ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्य अधिक नहीं है किन्तु ऐतिहासिक मूल्य है। लोगों ने इन महात्माओं की कृतियों का उल्टा-उल्टा अर्थ लगाया और परिणामस्वरूप वासनापरक दृष्टिकोण खूब पनपा तथा कौल, कापालिक आदि श्रेणियां बनीं—सिद्धताई समाप्त हो गई। इसी वातावरण के विरुद्ध गुरु गोरखनाथ ने हठयोग की साधना का मार्ग सुझाया। परिणामतः मूर्तिपूजा और तंत्रवाद का खण्डन हुआ, और एकेश्वरवाद का प्रचार बढ़ा। गोरखनाथ का रहस्यवाद अटपटा न था—उसमें भावों की उत्कृष्टता थी। चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, चर्पटनाथ आदि गोरखपंथी नाथों ने समाज को प्रभावित किया किन्तु अव्यावहारिकता के कारण नाथपंथ का ह्रास हो गया।

हिन्दी के सन्त कवियों का उदय इसी नाथ सिद्ध पृष्ठभूमि पर हुआ। इन सन्त कवियों में कबीर के साथ दादू, सुन्दरदास, रैदास, मलूक-

दास, पल्टू साहब, नानक, भीखा साहब, दया बाई, सहजो बाई का नाम सहज ही स्मरण हो आता है। ये सभी सन्त कवि सुधारवादी थे। इन्होंने धर्म के बाह्याडम्बरों का विरोध कर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। इन पर एक ओर भक्तियोग व एकेश्वरवाद के रूप में सिद्धों व नाथों का प्रभाव रहा तो दूसरी ओर सूफियों और वैष्णवों की माधुर्य-भक्ति, अहिंसा और प्रेम की तीव्रता का। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये इन्होंने मूर्तिपूजा व बहुदेव-वाद का खण्डन किया और पंडितों के संकीर्ण धर्म-विधान को न माना। ये सन्त तो केवल अपने मत का प्रचार करते थे, किन्तु भावुक होने के कारण इनके काव्य में सरसता आ गई है। कबीर में अक्खड़पन और तीव्र आलोचना प्रवृत्ति अधिक होने के कारण तथा रूढ़ि विरोधी भाव धारणा के कारण रहस्यात्मकता भी आ गई है।

विचित्र बात यह है कि सभी सन्त कवि अन्त्यज थे। दादू–धुनियां, कबीर–जुलाहा, सदन–कसाई, रैदास–चमार, नानादास–डोम, नामदेव–दर्जी, नानक–खत्री। इनके लिये तत्कालीन रूढ़ियों के कारण शास्त्र और ज्ञान-मंदिर के द्वार बन्द थे। इसीलिये इन्हें अपने अन्तर में ही ब्रह्म का साक्षात्कार करना पड़ा। पर इनकी साधना सच्ची थी। इसी के बल पर इन्हें ईश्वरानुभूति हो सकी।

सन्तों का ईश्वर निर्गुण और 'एक' है—साम्प्रदायिकता की संकीर्णता से दूर। गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। आत्मा का परमात्मा से मिलन कठोर साधना और प्रतीक्षा के बाद होना माना गया है। ईश्वर के प्रति सन्तों का प्रेम अडिग, खरा और निर्मल है। सन्तों पर वैष्णव वृत्ति का प्रभाव होने के कारण उनका निराकार ईश्वर साकार-सा प्रतिभासित होता है। यही कारण है कि सन्तों की ईश्वर भावना अस्पष्ट एवम् असंगत-सी प्रतीत होती है।

सन्त कवि शास्त्रज्ञ न थे। उनका काम तो 'मत' का प्रचार करना था। अतः उनमें प्रबन्ध-पटुता नहीं मिलती—सभी ने मुक्तक से काम लिया है, वो भी अपने ही ढंग से। कबीर तो दोहे जैसे सीधे छन्द को भी ठीक से न उतार सके। उनके सभी गीत 'सबद' बन गये।

सन्तों की भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है। भ्रमणशील होने के कारण ये जहां भी जाते थे उस प्रदेश की भाषा की छाप उन पर पड़ती थी। राजस्थानी पंजाबी, ब्रज, ग्र ~ दि का सम्मिश्रण हो जाने के कारण सन्तों [illegible] भाषा [illegible] रस हो गई है।

साधनापरक होने के कारण सन्त काव्य का मुख्य रस 'शान्त' है। जहाँ प्रतीकात्मक उक्तियाँ हैं वहाँ विप्रलम्भ शृंगार और हठयोग के वर्णन में बीभत्स रस की सृष्टि मिलती है।

सन्त काव्य की पृष्ठभूमि, चिन्तन विधि और काव्यगत-विशेषताओं पर संक्षेप में आकलन करने के पश्चात आइये विचार करें कि राष्ट्रीय जागरण और प्रगतिशीलता के चरण बढ़ाने वाले आज के अपने समाज को ये काव्य कौनसी प्रेरणा प्रदान करते हैं।

स्वतन्त्रता-संग्राम में सर्वाधिक बल साम्प्रदायिकता उन्मूलन और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर दिया गया। मुक्ति-प्राप्ति के २३ वर्ष पश्चात आज भी देशोत्थान के लिये समन्वयात्मक भावनाओं की उतनी ही आवश्यकता अनुभव की जाती है। सन्तों ने भाषा और भाव, छन्द और शैली सभी दृष्टिकोणों से सरलता और एकता को अपनाया। जाति भेद, धर्म भेद को सदैव धिक्कारा। उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों को एक ही मानवीय धरातल पर परखने का प्रयास किया है। निस्सन्देह उनका दृष्टिकोण सदैव समाज के लिये हितकारी साधनापरक रहा है। सन्त काव्य स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि राम और रहीम में कोई अन्तर नहीं, मंदिर व मस्जिद में भेद नहीं। अन्तर है तो केवल अपने दृष्टिकोण एवम् वैचारिक संकीर्णता का। कबीर तो बड़े निःशंक भाव से ललकार उठे हैं—

"जो तू बामन बामनी जाया तो आन बाट ह्वै क्यों नहीं आया।
जो तू तुरक तुरकनी जाया तो भीतर खतना क्यों न कराया॥"

एक अन्य स्थान पर कवि ने कहा है—

"जोगी गोरख गोरख करै, हिन्दू राम नाम उच्चरै।
मुसलमान कहे एक खुदाई, कबीर का स्वामी घर-घर रह्या समाई॥"

तथा

"मोकों कहाँ ढूंढै बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में॥"

और सन्त रज्जब की बात सुनिये—

"सब घट घट्ट समान है, बह्म बीजुली माँहि।
रज्जब जिसके बीन में सो समुझै कोई नाँहि॥"

वस्तुतः मानव सब एक हैं। सम्प्रदाय, जाति, धर्म आदि सब

जाले ही जाले

• विश्वेश्वर शर्मा

शिकायत मुझे ही नही है। घर मे सबको ही उस पर गुस्सा आता है। और तो और खुद उसके मा-बाप भी उस पर चिढ़ कर रह जाते हैं। यह लड़की न जाने कैसे नक्षत्रों में हुई है। नौ महीने की होने आई लेकिन इसने जी भर कर सास नही ली कभी। रोना, रोना और रोना। दुबली-पतली मरियल है; लेकिन रोती इतना तीखा है कि आवाज मन को काटती हुई बिखरे बम की तरह पूरे शरीर मे काटे चुभो जाय। ऐसे समय मेरा ही चित्त नही भटक जाता बल्कि घर मे सब हाथ का काम भूल जाते हैं और एक साथ कई स्वर सुनाई देते हैं—'अरे···! इसे चुप करो।'

तब नन्हे की औरत बड़बड़ाती हुई अपने हाथ का काम छोड़ कर उसे गोदी मे लेती है। जब तक वह गोदी मे पडी रहती है, तब तक चुप रहती है और जैसे ही उसे नीचे उतारा कि फिर तार सप्तक मे रोना शुरू कर देती है।

सयोग और पूर्वजन्म के लेने देने ही की बात है। मेरे हर मूड को गुड़-गोबर करके रख देती है। सवेरे जब आख खुलेगी तो कान मे पहली आवाज उसके रुदन की होगी। दिन यही से बिगड़ेगा। फिर चाय पीकर कुछ पढ़ने-लिखने बैठूंगा तो ध्यान उधर जाते ही चीखेगी। इधर खाने का कौर मुंह मे रखा और उधर वह चिल्लाई। पूजा करने के लिए भगवान की प्रतिमा के सामने बैठते ही उसकी ध्वनि सुनाई देगी। यहा तक कि रात्रि को ज्योंही मीठी-सी झपकी आने लगेगी और वह अपना रुदन प्रारभ करेगी [illegible] तक नींद आएगी तब तक मेरी नीद उड़ चुकी हो[illegible] [illegible]गे, दस दिन हों। यह

सन्तों ने तो अव्यावहारिक शिक्षा का डट कर उपहास किया है—

"कबिरा पढ़िवा छाड़िदे, पुस्तक देइ बहाय।"

तथा

"पोथी पढ़ि पढ़ि जगमुआ, पंडित भया न कोय।"

आदि उक्तियां वस्तुतः जीवनोपयोगी न होने वाले अध्ययन के लिये ही कही गई हैं।

सन्तों के समाज में पंडितों की भांति नारी के लिये भी प्रगति का मार्ग खुला था। सच तो यह है कि उन्होंने नारी-जागरण के लिये प्रयत्न भी किया था तभी तो सहजो बाई और दया बाई को सन्तों की श्रेणी में प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकी।

सन्तों की साधना का मार्ग उनका जीवनोपयोगी चिन्तन और मानवोचित—दृष्टिकोण सार्वभौमिक ऐक्य और सच्चे समन्वयवादी समाजवादी विचारधारा को अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत कर युग-युग से प्रेरणा प्रदान करता रहा है और करता रहेगा।

•

जाले ही जाले

• विश्वेश्वर शर्मा

शिकायत मुझे ही नही है। घर मे सबको ही उस पर गुस्सा आता है। और तो और खुद उसके मा-बाप भी उस पर चिढ़ कर रह जाते हैं। यह लडकी न जाने कैसे नक्षत्रों में हुई है। नौ महीने की होने आई लेकिन इसने जी भर कर सांस नहीं ली कभी। रोना, रोना और रोना। दुबली-पतली मरियल है; लेकिन रोती इतना तीखा है कि आवाज मन को काटती हुई बिखरे बम की तरह पूरे शरीर में कांटे चुभो जाय। ऐसे समय मेरा ही चित नही भटक जाता बल्कि घर मे सब हाथ का काम भूल जाते हैं और एक साथ कई स्वर सुनाई देते हैं—'अरे···! इसे चुप करो।'

तब नन्हे की औरत बडबडाती हुई अपने हाथ का काम छोड कर उसे गोदी मे लेती है। जब तक वह गोदी मे पडी रहती है, तब तक चुप रहती है और जैसे ही उसे नीचे उतारा कि फिर तार सप्तक मे रोना शुरू कर देती है।

संयोग और पूर्वजन्म के लेने देने ही की बात है। मेरे हर मूड को गुड़-गोबर करके रख देती है। सवेरे जब आंख खुलेगी तो कान मे पहली आवाज उसके रुदन की होगी। दिन यहीं से बिगडेगा। फिर चाय पीकर कुछ पढ़ने-लिखने बैठूंगा तो ध्यान उधर जाते ही चीखेगी। इधर खाने का कौर मुंह मे रखा और उधर वह चिल्लाई। पूजा करने के लिए भगवान की प्रतिमा के सामने बैठते ही उसकी ध्वनि सुनाई देगी। यहा तक कि रात्रि को ज्योंही मीठी-सी झपकी आने लगेगी और वह अपना रुदन आरंभ करेगी सो उसे जब तक नींद आएगी तब तक मेरी नींद पूरी तरह उड़ चुकी होगी। ... हो, दो-चार हों, दस दिन हो। यह

रोज की मुसीबत। भाई की लड़की हुई तो क्या हुआ ? इतना सहन होता है क्या ? इस लडकी की वजह से मुझे भाई और उसकी पत्नी पर भी गुस्सा आता है। दरिद्री कही के। शादी किये तो पाच बरस भी नही हुए और तीन हो चुके, चौथे की उम्मीद है। घर मे पूरे तीन तो कमरे हैं ऊपर दो मेरे और नीचे एक उसका। इसी एक कमरे मे खाना भी, सोना भी और बच्चे पैदा करना भी। कमरा क्या है, गन्दगी का जीता-जागता स्वरूप है। लेकिन अब उसे कैसे समझाए कि भैया ! बस कर। पचीस बरस की उमर मे ही पैतालीस का लगने लगा है। अब भी अस्पताल जाकर आगे के लिए तो छुट्टी पा। लेकिन ऐसी बात कैसे वह अपने छोटे भाई से। फिर वह जाने इसका क्या अर्थ लगाए। रोती हुई लडकी के लिए बार-बार कहना पडता है सो तो उसकी पत्नी हम दोनो पति-पत्नी पर सख्त नाराज है। एक दिन तो मुझे सुना कर नीचे से बोली—ऐसा ही हो तो पुडिया दे दो इसे। रात-दिन का झगडा ही मिटे। यह डाकिन भी जाने किस जनम का बैर चुकाने आई है। और न जाने क्या-क्या वह उस लडकी को गालिया देती रही।

मुझे भी गुस्सा आ गया। ऊपर ही से बोला—'मौन तोड कर इतनी जोर-जोर से बोलने की जरूरत नही है, नन्हे की बहू ! लडकी रोती है तो उसे चुप रखा करो।'

मेरी आवाज सुनते ही नन्हे की बहू चुप हो गई। फिर मुनिया की आवाज भी नही आई। शायद वह लडकी को लेकर अपने मैके चली गई। बस यही उसके पास अन्तिम उपाय है। जब भी मैं जरूरी काम मे होता हू या भोजन इत्यादि कर रहा होता हू तो वह लडकी को लेकर अपने मैके चली जाती है।

नौ महीने की होने आई लेकिन आज तक मैंने उसे गोद मे उठाना तो दूर आख भर कर देखा तक नही। मुझे उसको देखते ही एक प्रकार की चिढ सी आ जाती है। मुझे होता है, इस लड़की ने मेरे कई काम बिगाड़े है। यह लड़की पूर्वजन्म की मेरी शत्रु है। कभी पत्नी उसे ऊपर उठा भी लाती है और मेरे सामने करने लगती है तो मैं चिढ कर मुह फेर लेता हू और उससे कहता हू—"इसे नीचे ही दे आओ इसकी मा को।"

वह लाड से उसे खिलाने का शौक करने लगती है तो मैं उस पर चिढ़ उठता हू—'इतने बच्चे खिला कर सन्तोष नहीं हुआ ?"

तो एक तीखा दर्द उसकी आँखों में तैर उठता है और वह जैसे भयानक घृणा-भरी आँखों से मेरी ओर देखने लगती है। उसकी आँखों के आगे तैर उठते हैं वे पाँच बच्चे-बच्ची जिन्हें हाथों में उछाल उछाल कर उसने गवा दिये। वह मेरी खिझ के उपरान्त भी उसे खिलाने से बाज नहीं आती और तब मुझे तो हाथ का काम छोड़ कर बाहर निकल जाना पड़ता है।

मैं रात-दिन मन में यही कामना करता हूँ कि कब यह लड़की इतनी बड़ी हो जाएगी कि फिर रोएगी नहीं। मैं चाहता हूँ अब वह अपनी यह शिशु अवस्था त्याग दे और थोड़ी गुदगुदी होकर आँगन में 'थे थे करती खेले, तो मैं भी किसी वक्त उठाकर चूम लूँ और अपने काम में लग जाऊँ; लेकिन लगता है बड़ी होने की जगह वह दिन-दिन और नन्ही होती जा रही है। दो महीने पहले तो फिर भी उसका शरीर कुछ गोल था; लेकिन आजकल तो बिलकुल दुबला गई है। चुड़ैल ने रो-रो कर अपना स्वास्थ्य भी खराब कर लिया है। सच, याद करता हूँ तो स्मरण आता है, छुटपने में नन्हा भी ऐसा ही था। मैंने तो उसे गोद खिलाया है। एक बार चिल्लाना शुरू करता तो घंटे पर जीभ मुँह में ही नहीं जाती। ऐसी ही चिड़चिड़ी और गुस्सैल उसकी औरत भी है। तो लड़की बिचारी का क्या दोष ? कई बार यह भी सोचता हूँ कि आखिर इस लड़की को कोई न कोई बीमारी है तभी इतनी रोती है। फिर यह निरी पशु है। इसे क्या पता ? कौन क्या कर रहा है और उसके रोने से किसी के काम में क्या हर्ज हो रहा है। वह कोई शौक से तो रोती नहीं। आखिर कोई न कोई दर्द होता होगा तभी रोती होगी। फिर मुझे नन्हे की बहू की मूर्खता पर गुस्सा आता है जिसे बच्चे पालना नहीं आता। जो कभी उन्हें साफ-सुथरा नहीं रखती। कभी उनसे प्रेम से नहीं बोलती। हर समय उसकी भौंहों पर एक क्रोध-भार सा चढ़ा रहता है और जब बोलती है तब बम फटी-सी ही बोलती है। सवेरे ही सवेरे लोग भगवान का नाम लेते हैं और वह इस रोती हुई लड़की को राँड-बाँड की गालियाँ देती है। संध्या को कभी दिया जलते ही इस लड़की का गुस्सा दूसरे बच्चों पर निकाल कर उन्हें पीटती है और फिर इसके साथ वे भी चीखते है। ऐसे में मेरी पत्नी उससे कुछ कहने जाय तो उसे भी कुछ का कुछ कह देती है। परिणामतः कई बार ये दोनों आपस में लड़ पड़ती है। नतीजे में एक विचित्र हंगामा हो जाता है। तब नन्हा अपनी पत्नी को डाँटता है और मैं अपनी पत्नी को

फटकारता है। फिर दोनों मिल कर हम दोनों पर बरसती हैं और इस तरह यह कांड उस दिन की पूरी तरह से हत्या कर देता है।

इसलिए अब मैं यहां तक भी सोचने लगा हूं कि कोई और जगह किराये पर मकान ले लूं, ताकि शान्तिपूर्वक तो रहने को मिले। यह रोज रोज की किट-किट। घर क्या है, जैसे मुसीबत का अखाड़ा है। हर घड़ी कोई न कोई कांड चलता ही रहता है। इसीलिए अक्सर मेरी घर से बाहर निकल जाने की आदत पड़ गई है। अपनी जरूरत का काम करके मैं तुरन्त घर से बाहर हो जाया करता हूं। सच पूछा जाय तो इसी लड़की की खातिर मेरा नन्हे से बोलना-चालना भी कम है। उसके कमरे में पांव रखे तो मुझे *कई-कई दिन हो जाते हैं। वरना पहले दिन-रात नन्हा* मेरे ही साथ रहता था। मेरे साथ खाना खाए तो उसका पेट भरे। मेरे पास सोये तो उसे नींद आये। उसकी भाभी ने उसे अपने ही बच्चे की तरह रखा है। लेकिन आज वही उसकी भाभी उससे बोलती भी नहीं। मैं भी कभी-कदा कोई बहुत जरूरी बात हुई तो बोल लेता हूं वरना हम चुपचाप एक ही घर में अजनबियों की तरह ही रहते हैं।

जब लड़की रोती है और मैं ऊपर से चुप रखने को आवाज लगाता हूं तो नन्हे की बहू भले ही बड़बड़ाये, नन्हा कुछ नहीं बोलता। ऐसे वक्त वह भी घर से बाहर हो जाया करता है। फिर अकेली औरत बड़बड़ाती है, तब मेरी पत्नी गुस्सा खाकर कहती है, "थोड़ा तो धीरे बोलो, ऊपर बैठे वे सुन रहे हैं।" फिर वह वापस जोर से कहती है—'सुन रहे हैं तो मैं क्या किसी से डरती हूं। लड़की है, और रोती है तो मैं क्या करूं? कोई मैं जान करके तो इसे नहीं रुलाती।"

तब मेरी पत्नी मुंह ही मुंह में बड़बड़ाती है—कौन मुंह लगे इसके। आप जानो और आपके भाई की बहू जाने। यह तो रात दिन होने लगा। फिर मैं बाहर जाने के लिए नीचे उतरता हूं तब तक नन्हे की बहू भी लड़की को कंधे पर डाले मैके के लिए निकलती हुई आगे मिलती है।

मैंने इस सम्बन्ध में अपने मन को अब पूरी तरह इस बात के लिए तैयार कर लिया है कि चाहे जो भी काम बिगड़े अब मैं मुनिया रोएगी तो नन्हे की बहू से कुछ कहूंगा नहीं। भले ही क्यूं न मुझे घर से बाहर ही रहना पड़े या अलग मकान ही लेना पड़े? लेकिन अब मैं मैं उसके

रोने पर उसे चुप रखने के लिए नही कहूगा। इस तरह आपस मे जहर घोलने से क्या लाभ ? रात दिन के क्लेश से तो अच्छा है कि मैं ही झुक जाऊ।

और जब मैंने यह तय कर लिया है तो अब मुनिया रो नही रही है। उसके रोने की आवाज को सुनने के लिए तैयार होते हुए भी मैंने सवेरे से ही उसकी एक भी बांग नही सुनी। सवेरा ही बड़ा सुखद हुआ। फिर चाय पीकर कुछ लिखने बैठा तो भी शाति थी। भोजन करते समय थोड़ी-सी चिल्लाहट आई। फिर दिन भर मे एक भी बार नही बोली।

मैं पत्नी से कहता हूं"......"आज मुनिया रोई नहीं एक भी बार।"

"उसकी मा ने उसे अफीम देना शुरू कर दिया है। दिन भर नशे मे पड़ी रहती है।"

सुनकर मुझे नन्हे की बहू पर गुस्सा आया। मेरे नाम पर उसे जहर देकर सुलाए रखती है। बेवकूफ कुछ समझती ही नही। गुस्से में जो समझ मे आए कर लेती है। मैंने निश्चय कर लिया कि अब मैं नन्हे को इसके बारे मे कहूंगा। लडकी रोती है तो क्या जहर दे दें।

लेकिन अपनी व्यस्तताओ में मैं नन्हे को यह सब कह नहीं पाया हूं। मुनिया की आवाज अब नही आती है और मुझे याद आते ही गुस्सा आता है कि कम्बख्त ने अफीम देकर सुला रखा है। मैं नन्हे से कहने भी जाता हूं। लेकिन नन्हा तब होता नही है। सारे दिन से मुनिया नही रो रही है। घर में सब खुश हैं। किसी के काम में कोई अड़चन नही। लेकिन मैंने नन्हे को यह सब कह देने का निश्चय कर लिया है। वह जैसे ही बाथ रूम से बाहर आया मैंने आवाज देनी चाही, लेकिन यह सोच कर चुप रह गया कि व्यर्थ ही वह अपनी औरत से झगड़ेगा। मैंने अपनी पत्नी से कहा—नन्हे की बहू को समझा दो कि अफीम देने मे वह और अधिक कमजोर होगी और फिर बीमार हो जायेगी। तो उसने कहा—"हो क्या जाएगी ? है हो। तुम लोग तो अपनी धुन में फिरते रहते हो। वह ऐसी हालत में भी उसे अफीम दे देती है और हम समझते हैं नशे में सोई है। मैंने तो कल शाम को उसकी हालत ठीक नही पाई। अब उसमें रोने की ताकत ही नहीं।"

मैं एकाएक चौंका। इतनी बात बढ़ गई और पता भी नहीं।

हो न तुम भी बेवकूफ अव्वल दर्जे की !"

'कहे तो सुनता कौन है ? आपके भाई मुझ से बोलते नहीं। उनकी बहू मुझे देखते ही तन जाती है। आप अपने काम में, या बाहर। फिर भी फर्ज है सो चुपचाप किये चली जाती हूं। कल से उसके लक्षण ठीक नहीं।"

"तो क्या अस्पताल ले चलें। चलो तो देखें......" आगे-आगे वह और पीछे-पीछे मैं। नन्हे के कमरे में जाकर मुनिया की हालत देखते ही मेरे होश उड़ जाते हैं। रूई जैसी सफेद भक्क और सींक जैसी पतली हो गई तो भी इन लोगों की आंख नहीं खुली। गुस्से में मैं बाहर निकलता हूं और घर से निकलकर एक दुकान से अस्पताल एम्बुलेंस के लिए फोन करता हूं। फिर घर आकर नन्हे की बहू से कहता हूं कि अपने जरूरी सामान बांध लो। इसे अस्पताल लेकर जाना है।

इसी समय नन्हा भी बाहर से आ गया। मैंने उससे डांट कर कहा, "बेवकूफ! लड़की मरने आ गई और तू अभी एक पुड़िया भी नहीं ला सका दवा की। सुनते ही नन्हे के हाथ-पांव कांपने लगे और वह रोता हुआ कमरे में घुसने लगा तो मुझे गुस्सा ऐसा आया कि एक थप्पड़ मार दूं। चीख कर बोला—"अभी मरी नहीं है नालायक! इसे अस्पताल ले जाना है।"

तब कहीं वह चुप हुआ। एम्बुलेंस आ गई तो नन्हे की बहू, मैं, मेरी पत्नी और नन्हा सभी अस्पताल गये। एमरजेन्सी में भर्ती करवाया लड़की को। रात भर जागते रहे। कोई तीन चार इंजेक्शन रात को ही लग गये। तब कहीं उसकी आंख तनिक नरम हुई। सवेरे नन्हे की बहू को अस्पताल में अकेली छोड़ कर हम लोग घर आ गये। दिन को मेरी पत्नी चली गई। शाम को नन्हा और उसके ससुराल वाले पहुंच गये। शाम को मुझे खबर लगी तबीयत ठीक है, तो मैंने थकान की वजह से वहां जाना स्थगित रखा।

सवेरे ही सवेरे नन्हा घबराया हुआ आया—"भाई साहब! उसकी हालत नाजुक है।" और कहते-कहते उसकी आंखों में पानी छलक आया। मैं सब काम छोड़ साइकिल उठा कर अस्पताल पहुंचता हूं। वहां नन्हे की बहू और उसका पिता मेरी ही प्रतीक्षा में खड़े मिलते हैं। नन्हे की बहू के पिता कहते हैं—"आप किसी तरह एक डाक्टर ला दीजिए।

मैं समझ जाता हूं। मेरी छाती धड़क उठती है और मैं रो देना चाहता हूं। लेकिन मुझे इक्का लाना है। कार्य मे साहस बटोरता हूं। सड़क पर जाकर इक्का लाता हूं। बिलखती हुई नन्हे की बहू उसमें बैठती है। कपड़े से लिपटी मुनिया को उसके पिता अपनी गोद मे ले लेते हैं।

'यह क्या बात है बाबू ?"—इक्के वाला कहता है।

"कुछ नही भैया ! घर पहुंचा दे। छोटे मुहल्ले मे। और मैं उसके हाथ मे दस का एक नोट बढ़ा देता हूं। घर पहुँचते ही कोहराम मच जाता है। नन्हा दीवारों से सिर पटकने लगता है। मेरी तरफ लाल-लाल आखो से देखने लगता है और पागल की तरह चिल्लाता है—"अरे इसे चुप करो। यह सबको दुःख देती है.........।"

मैं उसे डाटता हूं—पागल कही के। दुःख मे धीरज खोता है। ऐसा करने से यह आ जाएगी क्या ? तेरे कौन से काम बिगाडे हैं इसने ? यह तो मेरे ही हर काम मे रोया करती थी......हाय ! और मैं भी अपना धीरज खो देता हूँ।

रोते बिलखते भी हम पाच छः आदमी उसे गड्ढा खोद कर दफना देते हैं। अन्तिम बार गड्ढे मे रखते हुए मेरी दृष्टि उस पर पडती है तो लगता है जैसे नन्हे-नन्हें होठो से बिना ही बोले एक आवाज फूट रही है—बस अब मैं नही रोऊंगी। अब आपके काम मे कभी विघ्न नही बनूंगी। और अब मेरे सामने केवल दृश्य घूम रहे हैं। सूने-सूने दृश्य—रीते-रीते दृश्य जिनमें कुछ वाक्य तैर रहे हैं—मेरे अपने ही वाक्य। नन्हे की बहू के वाक्य। दृश्यो में घुली हुई है एक नन्ही सी गुड़िया ! जो अब रो नही रही है। लेकिन जिसकी कलेजे मे सीधी उतर जाने वाली रुलाई सुनने को मेरा रोम-रोम आकुल है। मेरी आखों मे नदी उमड़ आई है और मेरे मुंह से हिचकी के साथ ही निकल पड़ता है बेटी मुनिया......और फिर मैं पागल की तरह जोर से चिल्ला पड़ता हूं...ओ......मु......नि......या...ओ !

होली

• जगदीश चन्द्र शर्मा

पहला स्वर—भीनी-भीनी मधुर सुगन्धी छायी है,
चारों ओर नयी आभा मुसकायी है।

दूसरा स्वर—बीत गया पतझर, ऋतुपति के आने पर,
बहते हैं श्वासों पर सर्जन के निर्झर।

तीसरा स्वर—उजड़ी हुई वनस्पति फिर लहलहा उठी,
अंधकार को मिटा ज्योति जगमगा उठी।

पहला स्वर—यह मौसम सुखदायी है
मधु बेला गदरायी है।

दूसरा स्वर—किसलय छेड़ रहे हैं मनमोहक सरगम,
ललक रही है सहानुभूति जिनकी अनुपम।

तीसरा स्वर—यह उल्लास भरा फागुन, सुना रहा है अपनी धुन।
(सहगान)

हुआ विजय-शृंगार खुला हर्ष का द्वार।
नई-नई आशाएं आयी ले-लेकर सपना
क्योंकि उन्हें करना है अब से जग का कायाकल्प।
महक उठी मनुहार खुला हर्ष का द्वार।
नहीं रहा है वंचित कोई वन-उपवन का छोर,
गई वहां भी नए जागरण की मधुमयी फुहार।
हुआ भुवन-शृंगार, खुला हर्ष का द्वार।
[illegible] जिस तरह निरंतर उत्पादन का [illegible],
नव समृद्धि ने किया [illegible]।

है नूतन साकार, खुला हर्ष का द्वार।

पहला स्वर—दिशा-दिशा हो गई अनूठी फूलों से रंगीन;
नहीं, खोजने पर भी मिलता कोई भी द्रुम दीन।

दूसरा स्वर—सरिताओं में भी उमड़ा है नव यौवन;
उन सब ने भी पाया है नवजीवन-धन

तीसरा स्वर—मना रहे हैं सब मानों कोई उत्सव,
सद्भावों का हुआ जा रहा है उद्भव।

पहला स्वर—इधर, आज है पर्व अनोखा होली का;
नृत्य हो रहा है तितली की टोली का।

(सहगान)

सबके तन-मन में, जीवन में नई मधुरता घोली,
जीवन की मधुमयी उमगें लेकर आई होली।

नई प्रेरणा देने वाला यह त्योहार निराला है,
जगती के आंगन में जिसने नवयौवन भर डाला है।

बार-बार अभिवादन करती प्यारी कोयल बोली;
जीवन की मधुमयी उमगें लेकर आई होली।

जयी हुई प्रह्लाद, नष्ट कर हिरनाकुश की निष्ठुरता,
सफल हुआ है न्याय, जहां दल कर अन्यायी दुष्करता।

होली ने इन गाथाओं की यादगार है खोली,
जीवन की मधुमयी उमगें लेकर आई होली।

हरी भरी फसलें खेतों के आंगन में लहराती हैं,
खाद्य-समस्या को हल करने का दायित्व उठाती हैं।

तृण-तृण के मस्तक पर होली लगा रही है रोली,
जीवन की मधुमयी उमगें लेकर आई होली।

उड़ता है मकरंद रंगीला, बन ठन कर शोभाशाली,
कोटि इन्द्रधनुषी छवियों को दे-देकर हाथाताली—

दिग्मंडल में रंगबिरंगी रचा रहा रंगोली,
जीवन की मधुमयी उमगें लेकर आई होली।

पहला स्वर—होली है सब का त्योहार—

या सर्वोदय का विस्तार।

दूसरा स्वर—होली है ऋतुपति वसन्त का चरमोत्कर्ष,
होली है सुन्दर सज्जाओं का निष्कर्ष।

तीसरा स्वर—लेकिन होली देश-प्रेम से ओतप्रोत है,
शौर्य और साहस का यही अथाह स्रोत है।

पहला स्वर—स्वाभिमान का पाठ पढ़ाती है होली।
हैं प्रफुल्ल होली के सारे हमजोली।

दूसरा स्वर—मेलजोल के व्यवहारों का होली है सुन्दर सगम,
पिचकारी से सब के ऊपर रंग निखरता है उत्तम।

तीसरा स्वर—होली के सकेतों पर,
हम भी उत्साहित होकर,
अपनी-अपनी पिचकारी
आह्लादित हैं ले लेकर।

पहला स्वर—अपना रंग जमाए अब,
रंगों में छक जाए सब।

दूसरा स्वर—हो जाओ तैयार!
आई नई बहार!

तीसरा स्वर—वेणु बजाए मधुकर, हम खेलेंगे फाग;
बना रहे सब के जीवन में स्नेह-पराग।

एक सन्ध्या

• भंवरसिंह सहयाल

हंस,
दिन भर आकाश में उड़ने के बाद
थक कर
जा ही बैठा पश्चिम की सूनी डाल पर।
समय के क्रूर बहेलिये ने
छोड़ ही दिया आखिर
अपना तीर,
और बेचारा हंस
अपने पंखों की फड़फड़ाहट के बीच लुढ़क कर
न जाने कहां खो गया !
रह गया उसके रक्त से सना
यह आसमान !

•

वेदना

• विश्वम्भर प्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी'

श्रमिकों के उत्तप्त
स्वेद बिन्दुओं की चीत्कार में
मधु बिन्दुओं की बौछार में
जन्मा—
ढेर सा दर्द 'ताज'।
दमन की आह
और—
कराह की तपन में उठी
मौन की दीवार।
जख्मों के नीचे
दर्दीले प्रहार में
पैदा हुए निर्मित
दुनिया के आश्चर्यों का शृंगार।
भूख से तड़पती
जिन्दा लाशों पर
चुने गए हैं—
ये स्वप्नचुम्बी महल।
यहाँ सजती है—
खूबसूरती
बनती है—
[illegible] की जिन्दगी
पलती है—

कील का दर्द

• चतुर कोठारी

हमारी सविस ने
पॉलिश वाले चमचमाते जूते की तरह
उसे खूब प्रभावित किया
किन्तु
वह क्या जाने—
भीतर चुभने वाली
कील का दर्द ?

•

आदमी को क्ट

पहाड़ मे
उगा हुआ शोर
हवाओ के कन्धों पर
उतरता है मैदानों मे
रात के किस पहर
खुमारी को ओढे
आदमी को क्या पता।

सूरज के बाद
मिलने वाला सुख
भोगता है किसके साथ
बासो का जगल
धरती के किस छोर
शहर में सोये
आदमी को क्या पता।

पोखर मे अधडूबा
बगुला
कब करता है आखें बन्द
घास के खेत मे
टेसू के फूल
ढूढ़ने वाले
आदमी को क्या पता

हवायें क्यों ठिठरीं
किसने लिखा है नाम
धूल पर
तितलियों का
कौन पी गया
रंग
अपने से बहुत दूर
भागने वाले
आदमी को क्या पता ।

चुभो कर आलपिनें
अनुभूति के होठों पर
सलीब में बैठे
इस अकेले
आदमी को क्या पता ।

मरखैल गाय

• होतीलाल शर्मा 'पौर्णेय'

किसन कौर की छोटी लड़की दो वर्ष की थी। वह खड़ी होने लग गई थी। मा के स्तनो मे दुग्ध के अभाव में, यह छोटी बालिका अत्यन्त दुर्बल थी। गाव के वैद्य जी ने बताया कि इस बालिका को गाय का दूध पिलाया जाय। फिर क्या था किसन कौर अपने पति रामसुख से गाय खरीदने का आग्रह करने लगी। रामसुख मे इतनी सामर्थ्य न थी कि वह गाय खरीद सके। बोला—'अब की फसल ठीक हो गई तो बैसाख मे खरीद लेंगे। अभी रहने दो।"

किसन कौर ने आग्रह जारी रखा—"बडी मुश्किल से तो पर-मात्मा ने एक सन्तान दी है। दूध न मिलेगा तो यह भी चल बसेगी। खाना-कमाना तो जिन्दगी भर का है।"

"पर बिना रुपयों के गाय कहा से लाऊ। गरीबो को कोई उधार भी तो नहीं देता है।"

किसन कौर ने कहा—"दादा हरिदास की गाय कल ही ब्याई है। उनसे बातचीत करके तो देखो। शायद रुपयों के लिए बैसाख तक मान जाय।'

रामसुख हरिदास की गाय के विषय मे अच्छी तरह जानता था। बोला—"वह गाय तो मुझे सोने से लिपटी हुई भी नही चाहिये। क्या तुझे मालूम नही कि वह गाव भर मे मारने के लिए प्रसिद्ध है। ऐसी मरखैल गाय को लेकर क्या करेंगे।"

परन्तु किसन कौर को तो गाय खरीदने की [illegible]
अपने घर मे गाय देखना चाहती थी। अपनी छोटी [illegible]

उसे अतिशय प्यार था। साथ ही वह यह भी जानती थी कि हरिदास दादा उस मरखैन गाय को बैसाख तक के लिए उधार अवश्य दे देंगे। अपने पति की दलील को काटती हुई बोली—"जब हम उसे प्यार से रखेंगे। उसे ठीक तरह से चरायेंगे तो क्या फिर भी वह मारेगी। मेरी समझ में तो कोई भी ढोर अपने घर वालों को नहीं मारता। इसलिए देर न कर अभी दादा हरिदास के पास जाकर पूछ आओ।'

रामसुख अपनी पत्नी के हठ की उपेक्षा न कर सका। सीधा दादा हरिदास के पास पहुंचा। हरिदास हुक्का पी रहे थे। हुक्के का धुआं उगलते हुए बोले—"बैठो रामसुख, कहो कैसे आये ?"

"दादा, क्या अपनी गाय बेचते हो ?" रामसुख ने पूछा। दादा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह उस गाय से इतना परेशान हो चुका था कि किसी को मुफ्त भी देने के लिए तैयार था। परन्तु उस गाय को कोई मुफ्त भी नहीं लेता था। सभी जानते थे कि वह हरिया है, नित्य नये उत्पात लाती है। आज यह ग्राहक तो ईश्वर ने ही भेजा है। दादा तपाक से बोले— ले-ले न, तुझसे कोई मना थोड़े ही करूंगा। कल ही ब्याई है। बछड़ा दिया है। चाहे आज ही हांक ले जाओ।'

"कितने रुपये होंगे ?"—रामसुख ने पूछा।

(२)

किसन कौर दरवाजे पर खड़ी थी। उसने रामसुख को गाय लाते हुए देखा तो बड़ी प्रसन्न हुई। देखने मे गाय अत्यन्त सुन्दर थी। उसका गठा हुआ शरीर, उचित लम्बाई के सींग तथा लम्बी पूछ सभी अत्यन्त आकर्षक था। साथ में हृष्ट पुष्ट बछड़ा था। किसन कौर घर में गई और चौक में एक तरफ को लकड़ी का मूंटा गाड़ दिया। एक टोकरे में पड़ौसिन से माग कर आज के लिए कुट्टी ले आई। कल के लिए तो वह स्वयं प्रबन्ध कर लेगी।

रामसुख ने गाय को खूंटे से बाँध दिया और बछड़े को छप्पर के खम्भे से। गाय मस्ती से चरने लगी। किसन कौर दौडी दौडी कुए पर गई और एक मटका तथा एक बाल्टी पानी भर लाई। गाय ने पानी पी लिया। रामसुख ने कहा—"गाय के पास न जाना, यह मरखैल है।' परन्तु किसन कौर को तो गाय के साथ घुलना-मिलना ही था। वह गाय का सिर खुलजाने को एव उसकी पीठ पर हाथ फेरने को ज्यों ही उसके पास पहुँची, गाय ने अपने सीगो से उसे ऐसा धकेला कि वह पीठ के बल गिर पड़ी। यदि वह थोड़ा और हट कर गिरती तो सम्भवत. बाल्टी पर गिर कर उसके रीढ की हड्डी ही टूट जाती। रामसुख चिल्लाया—"मैंने पहले ही कहा था, गाय मरखैल है। उसके पास क्यो गई ?"

"तो ऐसी गाय का हम क्या करेंगे ? दादा को वापिस कर आओ।"

"अब लौटाई नही जा सकती, मैं वचन देकर आया हूं।" किसन कौर की गाय सम्बन्धी सभी प्रसन्नता और उमग लुप्त हो गई। वह उदास मन से दलिया दलने लगी।

सायकाल जब दूध दुहने का समय हुआ तो रामसुख ने बछडा खोला। वह गाय के नीचे स्तन-पान को जा लगा। गाय के थनो मे दूध आ गया। परन्तु ज्यो ही रामसुख दूध दुहने गाय के नीचे बैठा, गाय ने ऐसी लात मारी कि बाल्टी दूर जा पडी और रामसुख का दाया घुटना फूट गया। फिर क्या था, पति-पत्नी एक दूसरे पर आरोपो की वर्षा करने लगे। उनमे कोई भी पूर्ण रूप से गाय खरीदने के सम्बन्ध मे दोषी नही बना चाहता था। रामसुख ने झल्ला कर कहा—"तुझे चढ़ी थी गाय खरीदने की, अब भरले दूध से बाल्टी !"

किसन कौर अपने ऊपर दोष क्यों आने देती—"ऐसे ऐसे चतुर आदमी होते हैं कि ठीक देख कर सौदा लाते हैं। एक तुम हो कि चीज ख़रीदने का शऊर तक भी नहीं।"

"तूने ही तो कहा था दादा की गाय खरीदने के लिए।"

"तो दूध दुहकर तो देख लेते। क्या इस बात को भी मैं ही बताती कि गाय भैंसें दूध दुह कर ठीक प्रकार से देखभाल कर ही खरीदी जाती हैं।"

तकरार को बढ़ता हुआ देख कर रामसुख शौच के लिए जंगल चला गया और किसन कौर दलिया चूल्हे पर चढ़ाने लगी। उसने सोचा था कि आज सभी दूध के साथ दलिया खायेंगे। परन्तु जब गाय ने दूध ही नहीं दिया तो उसका दूध के साथ दलिया खाने का कल्पनात्मक सुख विलीन हो गया। उसने उदास मन से दलिया बना लिया और थालियों में ठंडा कर दिया।

(३)

रामसुख और किसन कौर ने अब गाय से दूध की आशा छोड़ दी। दूध बछड़ा ही पीता था। लाली की बछड़े से आत्मीयता हो गई थी। दोनों शिशु प्रेमपूर्वक खेलते। लाली बछड़े के मुख को अपने दोनों हाथों से पकड़ लेती और अपने कपोलों से लगा देती। बछड़ा लाली के चारों ओर कुलाचें भरता और अपना प्यार प्रकट करता। गाय इन दोनों की क्रीड़ा को निहारती और एकटक देखती रहती। एक दिन लाली के हाथों में रोटी का टुकड़ा था। उसे खाती-खाती वह गाय के पास पहुंच गई। उसने रोटी का टुकड़ा गाय की ओर बढ़ा दिया। गाय उस टुकड़े को खा गई। बालिका को अतीव आनन्द हुआ। वह पुनः अपनी माँ के पास पहुंची और रोटी के लिए रोने लगी। किसन कौर ने रोटी का टुकड़ा उसे फिर पकड़ा दिया। कुछ समय पश्चात उसने देखा कि लाली गाय के पास खड़ी है और उसे रोटी खिला रही है। किसन कौर को भय हुआ कि कहीं गाय उसे मारे नहीं। वह दौड़ी हुई गई और लाली को वहाँ से गोदी में उठा लाई। गाय इस प्रकार देखने लगी मानो वही लाली की माँ हो और किसन कौर कोई अन्य हो जो उससे लाली को छीने ले जा रही हो।

पन्द्रह दिन पश्चात ही गाय का बछड़ा मर गया। लाली का मैत्री-संसार ही मानो समाप्त हो गया। गाय के थन दूध से भर गये। वह अपने थनों में दूध का भार सम्भाल न सकी अतः ज़ोर ज़ोर से रम्भाने

लगी। किसन कौर और रामसुख दोनों परेशान थे। लाली ने बछड़े को गाय के नीचे दूध पीते देखा था। परन्तु आज बछड़ा नहीं था। गाय को रोटी खिलाने के पश्चात लाली उसके थनों के पास जा खड़ी हुई। उसने निर्भय होकर उसका थन अपने मुख में ले लिया और दूध पीने लगी।

लाली का दूध पीना देखकर किसन कौर अवाक् रह गई। उसने रामसुख को पुकार के कहा—"देखो जी, दौड़कर आओ।" रामसुख पोली में कुट्टी काट रहा था। आकर देखा तो उसके भी आश्चर्य की सीमा न रही। बोला—"लाओ बाल्टी दे दो, शायद लाली के भाग्य से ही गाय दूध दे दे।" किसन कौर ने बाल्टी दे दी। एक थन को लाली पीती रही और शेष थनों से रामसुख ने दूध निकाल लिया। पति-पत्नी की खुशी का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि बाल्टी में चार सेर पक्का दूध है।

दूसरे दिन लाली बीमार पड़ गई। वह एकदम पिये हुए कच्चे दूध को पचा न सकी। उसको दस्त लग गये। रामसुख बाल्टी लेकर दूध दुहने बैठा तो गाय ने लात मार दी और अलग हट गई। इसको तो रामसुख पहले ही जानता था कि बिना लाली के वह दूध देगी ही नहीं। वह लाली को खाट से उठा लाया और उसे गाय के पास खड़ा कर दिया। गाय ने दूध दे दिया।

लाली दिन भर खाट पर पड़ी रही। नित्य ही वह आंगन में खेला करती थी। परन्तु आज वह गाय को दिखाई नहीं दी। गाय उदास रही। उसने न तो भरपेट चारा खाया न पानी ही पिया। वह बार बार रंभाती और कभी पोली की ओर तथा कभी भीतर कमरे की ओर देखती। जैसे तैसे संध्या का समय आया। रामसुख और किसन कौर दूध निकालने की योजना बना रहे थे। लाली में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह खड़ी हो सके। किसन कौर उसे गोदी में लेकर गाय के सामने खड़ी हो गई और रामसुख बाल्टी लेकर गाय के नीचे बैठ गया। थोड़ी ही देर में बाल्टी दूध से भर गई।

गर्मी के दिन थे। रात्रि में सभी चौक में सोते थे। आज भी चौक में ही खाटें बिछा ली। दैवयोग से दम्पत्ति को पोली के किवाड़ बंद करने का ध्यान न रहा। वह खुली ही पड़ी रही। पास में हरजी गडरिये का भेड़ों का बाड़ा था जिसमें से यदा-कदा दो-एक भेड़ें भेड़िये का शिकार हो जाया करती थी। उस रात को बाड़े में अपने प्रवेश की असमर्थता पाकर

भेड़िया राममुख के घर में घुस आया। दोनों गहरी नींद में सोये हुए थे। लाली किसन कौर के पास सो रही थी। भेड़िया को देख कर गाय खड़ी हो गई। ज्योंही भेड़िया किसन कौर की खाट की ओर बढ़ा गाय उसके अपवित्र इरादे को समझ गई। उसने सारा जोर लगा कर रस्सा तुड़ा लिया और अपने सींगों से ऐसी टक्कर भेड़िया को दी कि वह दो गज दूर जाकर गिरा। गाय की इस हरकत से राममुख की नींद खुल गई। उसने देखा कि गाय पौली के दरवाजे की ओर आगे बढ़ाये लाली की खाट के पास ही खड़ी है। उसने गाय को बांध दिया परन्तु उसके मन में कुछ सशय हुआ। सम्भवत: कोई चोर घर में घुस आया हो और पौली में छिपा हो। वह एक छोटा डण्डा लेकर पौली की ओर गया तो देखा कि दरवाजा खुला है। उसे रात्रि के अंधेरे में एक बड़े कुत्ता जैसा जानवर जाते हुए दिखाई दिया। उसके मन का भ्रम दूर हो गया। गाय की पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने परमात्मा को भी कोटिश धन्यवाद दिये।

(४)

चार दिन तक लाली स्वस्थ नहीं हुई। किसन कौर उसे गोदी में लेकर गाय के सामने खड़ी हो जाती और राममुख दूध निकाल लेता। सारे गांव में यह बात फैल गई कि मरखैल गाय राममुख के यहां खूब दूध देने लगी है। लोगों ने बड़ा अचम्भा किया क्योंकि एक तो गाय ही बदमाश थी दूसरे उसका बछड़ा भी मर चुका था फिर भी दूध दे रही थी। दादा हरिदास के कानों में भी यह बात पहुंच गई। उनके मन का शैतान जाग उठा। वे गाय को वापिस लाने के लिए अधीर हो गये। हुक्का पीते पीते राममुख के यहां पहुंचे तो किसन कौर लाली को लेकर गाय के सामने खड़ी हुई थी और राममुख दूध निकाल रहा था। दादा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने दूध की भरी बाल्टी लेकर राममुख को गाय के नीचे से उठते देखा। दादा बोले—"कहो राममुख, गाय ठीक दूध दे रही है?" राममुख दादा के अभिप्राय को समझ न सका। बोला—"हां दादा, दुनिया ने गाय के बारे में व्यर्थ ही अफवाह फैला रखी है वरना गाय तो बहुत अच्छी है।" राममुख गाय की प्रशंसा करके दादा के प्रति आभार प्रदर्शन करना चाहता था कि उसने कितनी अच्छी गाय उसे दी है परन्तु दादा पर इस विवरण का और ही प्रभाव पड़ा। दादा का मन गाय के लिए ललचाने लगा। दादा ने कहा—"रुपयों की जरूरत आ पड़ी है, अब दे दो तो अच्छा है।" राममुख को मानो काठ मार गया। बोला—"दादा

रुपया तो बैसाख में दूंगा। यही तो ठहरा था, पर इस समय मेरे पास रुपया कहां है?"

"भाई, इतना रुकना तो नहीं हो सकता। दुधारू गाय इतने दिनों के लिए उधार थोड़े ही दी जा सकती है। सरजीत नकद देने को तैयार था परन्तु मैंने तो तुम्हारा लिहाज करके यह गाय तुम्हें उधार दे दी थी। या तो कल तक रुपयों का इन्तजाम कर दो नहीं तो मैं अपनी गाय वापिस ले जाऊंगा।" ऐसा कहते कहते दादा हुक्का गुड़गुड़ाते चले गए।

दादा के चले जाने के बाद किसन कौर फुसफुसाई—"जब गाय हमारे यहां दूध देने लगी है तब उसे वापिस लेने आये हैं। इनको शर्म भी नहीं आती अपने वायदे से मुकरते।" रामसुख बोला, "और अपनी गाय ले तो जाय! उधार देकर हम पर कोई एहसान थोड़े ही किया है। क्या ये अपना रुपया छोड़ देंगे। और फिर क्या दुनिया में एक दूसरे के काम उधार से नहीं चलते।"

लाली के स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने लगा। वह खड़ी होकर फिर चलने लगी। गाय के पास पहुंच कर वह फिर कभी उसके थनों को पकड़ लेती, कभी पूंछ को और कभी मुंह को दोनों हाथों में लेकर दुलारती। गाय भी लाली को एकटक देखती। कभी उसके हाथ को चाटती और कभी सिर हिलाती मानो मूक भाषा में कहती हो कि चार दिन से तुम मेरे पास खेलने क्यों नहीं आई?

दूसरे दिन ज्योंही रामसुख दूध निकालने के लिए तैयार हुआ, दादा आ धमके। बोले—"कहो भाई रामसुख, रुपयों का इन्तजाम किया?" रामसुख ने कहा—"दादा, मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि रुपये तो मैं बैसाख में ही दे सकूंगा। यदि तब तक न रुक सको तो अपनी गाय खोल ले जाओ।" दादा को सन्तोष हुआ। उन्होंने गाय खोल ली। लाली आंगन में खेल रही थी। गाय को किसी अन्य द्वारा ले जाते हुए देख कर वह रोने लगी। गाय भी दरवाजे के बाहर न निकली। दादा खींच रहे थे और गाय खड़ी होकर बार-बार पीछे की ओर मुड़ कर देख रही थी। रामसुख ने दादा की सहायता की और एक छोटा सा डण्डा लेकर उन्होंने गाय को पीछे से हांका। गाय उदास मन से दादा के यहां चली गई। गाय के चली जाने पर लाली खूब रोई। किसन कौर ने उसे दिलासा दी कि गाय शाम तक घर आ जायेगी। जब शाम को भी गाय घर न आई तो लाली फिर रोने

लगी ।

दादा बड़े प्रसन्न-चित्त गाय को लेकर घर पहुंचे । बाल्टी लेकर दूध दुहने बैठे कि गाय ने ऐसी लात मारी कि बाल्टी अलग गिर पड़ी । दादा भी पीठ के बल गिर गये । दादा ने पास में रखा हुआ डण्डा उठाया और जोर जोर से गाय की पीठ में जड़ दिये । अब गाय ने दादा को अपने पास भी न आने दिया । शाम को दादा फिर बाल्टी लेकर गाय के समीप पहुंचे तो गाय ने दूर से ही सिर इतने जोर से हिलाया मानो कह रही हो कि यदि तुम मेरे पास आए तो सींगों से दूर फेंक दूंगी ।

गाय के चले जाने पर लाली इतना रोई कि उसे फिर बुखार आ गया । रात भर जोर से बुखार रहा । प्रातःकाल वैद्य जी लाली को देखने आये । उन्होंने दवा दी । गाय का शुद्ध दूध पीने के लिए बतलाया । वैद्य जी के चले जाने के पश्चात किसन कौर की आंखों में आंसू आ गये । वह अपनी इकलौती बेटी के लिए गाय का दूध भी नहीं जुटा सकती । चौक में छप्पर था, उसी के नीचे लाली की खाट बिछी हुई थी । लाली बुखार में बेहोश पड़ी थी । सहसा किसन कौर और रामसुख ने देखा कि गाय अपने सींगों में टूटा हुआ आधा रस्सा लिए हुए घर में घुस गई । वह बिना किसी भय के लाली की खाट के पास आकर खड़ी हो गई । उसने लाली के मुख पर अपना मुख रख दिया । लाली ने धीरे से आंखें खोलीं । दोनों प्राणी दो आंखों में मानो वार्तालाप करने लगीं । लाली मानो कह रही थी—"तुम मुझे छोड़ कर कहां चली गयी थीं ?" गाय मानो उत्तर दे रही थी—"तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती, लो अब आ गई ।"

पीछे से दादा दूसरा हाथ में लिए हुए आए । कहने लगे—"भाई रामसुख, गाय को तुम्हीं रखो । इसे तुम्हारी लाली प्यार से दे देना ।"

छलक रही है आज गगरिया

• निपसाल 'मृदुल'

गगन वही है सुबह-सुबह का
हवा वही है भीनी-भीनी
पनघट वही हमेशा वाला
मटकी वही हमेशा वाली
और वही हूँ पनिहारिन भी, वही गाँव है वही डगरिया।
फिर क्यों छमक-छम-छम करती, छलक रही है आज गगरिया ॥

मानें तो सब वे ही हैं पर
धरती का कुछ रंग नया है,
कोयल कू-कू कूक रही है
शायद मौसम बदल गया है,
बदला मुझको बदन लगा कुछ, बदली-सी कुछ लगी चूनरिया।
बदला सा कुछ हाव-भाव भी, छलक रही है आज गगरिया ॥

सरस रसीला मौसम लगता
लगती है हर बात रसीली,
और रसीले इस फागुन में
सपनों की हर रात रसीली,
पर हो सपना सच्चा कैसे, किस से पूछूँ राज गगरिया ?
बता; बावरी होकर क्यों तू—छलक रही है आज गगरिया ?

मुझे सुना सपनों में मुरली
किसने मुझ पर जादू डाला
किस यमुना के तट पर बसता
मेरे मन का मुरली वाला,
बता गगरिया ! मुझको, उसकी किधर डगर है किधर नगरिया ?
बैठ वहाँ पर करूँ प्रतीक्षा, छलक रही है आज गगरिया ॥

प्रकटेगी प्रतिभा परिवेशों की

• विश्वेश्वर शर्मा

पिघलेगी बर्फ हिम प्रदेशों की

समय के सहेजे
अवशेष कुछ अतीत के
मूल्यवान पत्थर थे
शब्द कुछ व्यतीत के

उभरेगी भाषा उन्मेषों की

गुजर गया जो कुछ
वह लौट नहीं पाएगा
सूरज को छोड़ कर
प्रकाश कहां जाएगा ?

बदलेंगी ध्वनियां प्रदेशों की

मौन भंग होता है
सन्नाटा ले रहा उबासी
सुनहरी दिशाएं हैं
बिखर गई व्योम की उदासी

प्रकटेगी प्रतिभा परिवेशों की

•

अंकित पदचिन्ह जहां तेरे हैं

• विश्वेश्वर श

मैं तो उन राहों का राही हूं
अंकित पद चिन्ह जहा तेरे हैं।

सारे अभियोगों के बाद भी
आस्था अडिग है तो काफी है।
दड तो विधान है व्यवस्था का
प्रीत का स्वभाव सिर्फ माफी है।।

मैं तो आदेश का सिपाही हूं
जो हैं सकेत सभी तेरे हैं।।

वैसे अस्तित्व तो खिलौना है
सभव है इसकी मर्यादा हो।
लेकिन अनजान जो स्वय से है
उसका क्या दोष ? क्या इरादा हो ?

मैं तो ज्यो काच की सुराही हू
रग तो शराब के सुनहरे हैं।।

जीवन की जाने क्या परिभाषा ?
एक शब्द कई अर्थ देता है।
लेकिन जो हो गया समर्पित ही
वह तो बस नाम एक लेता है।।

मैं तो स्थिति जैसे अनचाही हू
तेरे ही साझ औ' सवेरे हैं।।

•

प्यार का छंद

• भगवती लाल व्यास

कौन कह सकता है कि
नवजात शिशु का हाथ
मां के अमृतवर्षी वक्ष पर
और माथ
अभयदायी स्कंध पर ही हैं,
आंखों में निश्चितता और कुतूहल ही है ?
यह भी तो हो सकता है कि
उसका माथ अपने ही दुराग्रहों
और हाथ अणुबमों के ढेर पर हो,
आंखों में निश्चितता और कुतूहल की जगह
अनिश्चितता और भविष्य हो।
किन्तु इसी से, सिर्फ इसी से—
कोई मां नहीं फेंक देती अपने शिशु को।
वह प्रतीक्षा करती है समय की,
समय लाता है एक और शिशु
जिसका मस्तक केवल सत्य पर झुकता है
जिसकी मुट्ठियों में अणुबमों का
सही जवाब बन्द होता है
जिसकी आंखों में प्यार, प्यार और
केवल प्यार का छंद होता है।
मां की झुर्रियों में नया शबाब होता है उस दिन,
मां की कोख का खरा हिसाब होता है उस दिन।

मे वर्णित वीर नारी किस प्रकार जन्म से मृत्युपर्यन्त अपना जीवन, त्याग एव उत्सर्ग पूर्वक जीती है, इसके दोहो मे प्रतीत है। क्षत्रिय बाला अपने विवाह के पश्चात् कैसा पड़ोस पसन्द करेगी—

नह पड़ोस कायर नरा, हेली बास सुहाय।
बलिहारी जिण देस रे, माथा मोल बिकाय॥

वीर पति से परिणय के पश्चात् उसकी भावनाए ये है—

सहणी सबरी हू सखी ! दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणों पूत सम, वलय लजाणों नाह॥

ये दो बातें उसे सहन नही होगी कि उसका पुत्र उसके दूध को लजाये या पति उसके चूड़े (सुहाग चिन्ह) को कलकित करे। युद्ध मे पति की मृत्यु को जो वीरागना चूड़े की लाज समझती है, देखिए पलन मे अपने पुत्र को शिक्षा दे रही है—

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावें पालणें, मरण बड़ाई माय॥

शिशु को स्तनपान कराते समय वह अपनी आकाक्षा इन शब्दो मे व्यक्त करती है—

बाला चाल न बीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत मरता ढील की, ऊठियो घमसाण॥

ऐसी वीर पत्नी अपने पति की कायरता किस प्रकार सह सकती है। एक बार उसका पति युद्ध मे पीठ दिखा कर लौट आया तो वह अपनी सखी मणियारी से कहती है—

मणियारी जारी सखी अब न हवेली आव।
पिऊ मुवा घर आविया, विधवा किसा बणाव॥

युद्ध विमुख पति जीवित भी, पत्नी की दृष्टि मे मृत्यु-तुल्य है, कारण कि पति की मृत्यु के पश्चात् भी वह सती होने के लिए शृगार करती है जैसा कि वह नायण को युद्ध के पश्चात् आने के लिए कहती है—

नायण आज न माड पग, काल सुणीजे जग।
धारा लागी जै धणी, तो दीजै धण रग॥

यदि पति युद्ध मे स्वर्गासीन हुए तो अधिकाधिक शृगार करके

में वर्णित वीर नारी किस प्रकार जन्म से मृत्युपर्यन्त अपना जीवन, त्याग एवं उत्सर्ग पूर्वक जीती है, इसके दोहों से प्रतीत है। क्षत्रिय बाला अपने विवाह के पश्चात् कैसा पड़ोस पसन्द करेगी—

नहं पड़ोस कायर नरां, हेली वास सुहाय।
बलिहारी जिण देस रे, माथा मोल बिकाय॥

वीर पति से परिणय के पश्चात् उसकी भावनाएं ये हैं—

सहणी सबरी हूं सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणो पूत सम, वलय लजाणो नाह॥

ये दो बातें उसे सहन नहीं होंगी कि उसका पुत्र उसके दूध को लजाये या पति उसके चूड़े (सुहाग चिन्ह) को कलंकित करे। युद्ध में पति की मृत्यु को जो वीरांगना चूड़े की लाज समझती है, देखिए पलने में अपने पुत्र को शिक्षा दे रही है—

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बडाई माय॥

शिशु को स्तनपान कराते समय वह अपनी आकांक्षा इन शब्दों में व्यक्त करती है—

बाला चाल न बीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत मरता दीन की, उठियो घमसाण॥

ऐसी वीर पत्नी अपने पति की कायरता किस प्रकार सह सकती है। एक बार उसका पति युद्ध से पीठ दिखा कर लौट आया तो वह अपनी सखी मणियारी से कहती है—

मणियारी जारी सखी अब न हवेली आव।
पिऊ मुवा घर आविया, विधवा किसा बणाव॥

युद्ध विमुख पति जीवित भी, पत्नी की दृष्टि में मृत्यु-तुल्य है, कारण कि पति की मृत्यु के पश्चात् भी वह सती होने के लिए शृंगार करती है जैसा कि वह नायण को युद्ध के पश्चात् आने के लिए कहती है—

नायण आज न माड पग, काल सुणीजै जंग।
धारा लागी जै धणी, तो दीजै घण रंग॥

यदि पति युद्ध में स्वर्गासीन हुए तो अधिकाधिक शृंगार करके

वह उसके शव के साथ श्मशान में जा कर सती हो जावेगी जैसा कि उस वीर पत्नी की सास देखती है—

आज घरे सासू कहे, हर्ष अचाणक काय ।
बहू बलेवा हूलसे, पूत मरेवा जाय ॥

कितना पावन त्योहार घर में मनाया जा रहा है। पुत्र युद्ध में मरने जा रहा है, पुत्रवधू सती होने के लिए प्रसन्नता से तत्पर है, फिर वीर माता भी क्यों न हर्षित हो ? कायरता से, युद्ध से लौट आने पर ये वीरांगनाएं अपने पतियों का जिन शब्दों से स्वागत करती थीं, वे कुछ हैं—

कंत घरे किम आविया तेगा रो घण त्रास ।
लहंगे मूझ लुकीजिए, वैरी रो न विसास ॥

यो गहणो, यो वेश अब, कीजे धारण कंत ।
हूं जोगण किस काम री, चूडो खरच मिटंत ॥

कंत भला घर आविया, पहरी जे मो वेश ।
अब धण लाजी चूड़ियां, भव दूजे भेटेश ॥

विश्वास नहीं शत्रु घर में भी आ जाए इसलिए या तो मेरे लहंगे में छिप जाइए या मेरे गहने-वस्त्र पहन लीजिए। अब आपसे दूसरे लोक में ही भेंट हो सकेगी। दर्जी की पत्नी से भी वीरांगना विधवाओं जैसी लम्बी अंगिया लाने को कहती है—

दरजण लाबी आंगिया, आणीजे अब मूझ ।
तब टोटे मो नू दया, दूण सिवाई तूझ ॥

गधण को भी वीर के पीठ दिखाकर लौट आने का पछतावा है—

गधण कूकी रे गजब, भूडा आगम भौण ।
बलण कढायो इनर धण, मुहगो लेसी कौण ॥

पति को ही नहीं ये वीर नारियां युद्ध विमुख कायर पुत्र को भी इस प्रकार फटकारती थीं—

पूत महा दुख पालियो, वय खोवण, थण पाय ।
एम न जाणे आव ही, जामण दूध लजाय ॥

मुझे ही दुःख नहीं है, पुत्र ! तुम्हारी कायरता से तुम्हारी वधू भी शर्म से नेत्र झुका लेगी—

'भोला की डर भागियो, मन्न न पहुंडै एण ।
बीजो दीठा कुल बहू, नीचा करसी नैण ॥

हे पुत्र क्या तुम यह भूल गए हो—

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बाल ।
बारह बरसां बाप रो, लहै वैर लंकाल ॥

पति युद्ध हेतु जा रहा है । उसकी वीर पत्नी उसे कहती है—

बिण मरिया, बिण जीतिया, धणी आविया धाम ।
पग पग चूड़ो पाछटू, जै रावत री जाम ॥

क्या ऐसे उदाहरण विश्व इतिहास में किसी देश की कन्याओं, माताओं, बहिनों तथा पत्नियों के मिलेंगे ? कदाचित् नहीं ।

कभी-कभी ऐसे भी अवसर आते थे कि सारा घर ही कहीं प्रीति-भोज में अन्यत्र चला जाता था । पीछे से दुश्मन घर को सूना समझ कर घेर लेते थे । उस समय जो धैर्य, वीरता वे स्त्रियां दिखाती थीं वह भी एक परम आदर्श की बात इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित रहेगी । उस समय के कुछ चित्र देखिए—

गोठ गया सब गेहरा, बणी अचाणक आय ।
सीहण जाई सीहणी, सोधी तेग उठाय ॥

युद्ध का तूर्यनाद सुन कर, भाई को युद्धार्थ गए देख कर एक राजपूत बाला अपनी भाभी को सम्बोधन करती है—

घोड़ा चढ़णो सीखियो भाभी किसड़ै काम ।
बन्ध सुणीजै पार रो, लीजै हाथ लगाम ॥

वीरांगन [illegible] न्द से पीठ दिखाकर लौट आया । दुश्मन
[illegible] । घर । एक घर मात्र किया उस वीरा-
[illegible] पति का वेश धारण करके—

[illegible] थाइ ।
[illegible] इ ॥

[illegible] रा [illegible] है,
[illegible] ए—

सुत मरियो हित देश रे, हरस्यो बन्धु समाज।
मा नही हरखी जनम दिन, जतरी हरखी प्राज॥

जन्म से मृत्यु तक का, वीर नारी का जो चित्रण श्री सूर्यमल्ल जी ने चित्रित किया है, वह वीरता के सन्दर्भ मे अप्रतिम है। हिन्दी-साहित्य का अन्य कोई ग्रन्थ इतना वीर-रसपूर्ण, ओजपूर्ण तथा जोशपूर्ण नही लिखा गया है। मुझे ऐसा आभास होता है कि इन दोहों मे कवि की आत्मा ललकार-ललकार कर वीरों का मार्ग प्रशस्त करती है। नारी विषयक जो भाव इस ग्रन्थ में हैं वे श्रद्धेय एवं आदरणीय हैं। देखिए वीर पत्नी अपनी सखी से कहती है—

जो खल भग्गा तो सखी ! मोताहल सज थाल।
निज भग्गा तो नाहरो, साथ न सूनो टाल॥

दोनों स्थितियों मे वह मोतियों का थाल सजाने को कहती है। दुश्मन भाग गए तो वह विजय उपलक्ष मे मोतियो के थाल से पति की आरती उतारेगी। यदि अपने सैनिक भाग आए तो वह खुशी खुशी पति के साथ सती हो जाएगी, जैसा कि उसे विश्वास है कि पति के जीते जी अपने सैनिक पीठ नही दिखा सकते, उनके मरने पर ही वे युद्ध से विमुख हो सकते हैं।

वीर-सतसई मे वीर नारी का चित्रण बेजोड़, बेमिसाल एव अद्वितीय है। धन्य हैं ऐसे कवि जो तलवार के ही नही, कलम के भी इतने धनी थे कि अपनी मातृभूमि को मुक्त कराने के लिए जिन्होने कुछ भी उठा न रखा तथा ऐसी वीरागनाए जिस पावन भूमि पर होगी उस देश को क्या कोई परतन्त्र कर सकेगा ? उन्ही क्षत्रिय वीरागनाओं का उत्सर्ग, त्याग एव बलिदान है कि जो आज भी क्षत्रिय जाति की उच्चता को जीवित रखे हुए है, इस जाति के आदर्श की दुन्दुभि बजा रहा है।

वन्दे मातरम्

• नरेन्द्र मिश्र

[प्रत्येक पात्र केवल संकेत करता है, सारी कविता नेपथ्य में ही चलती है।]

पर्दा उठता है (सब अर्द्ध चन्द्राकार वृत्त में है। भारत-माता मध्य में है)
नेपथ्य से स्वर—

जयति-जयति जय जन्म भूमि जय जय भारत माता।
रजत हिमालय सी उन्नत जिसकी गौरव गाथा।
हिमशिखरों से रत्नाकर तक गूंज रहा जय गान
राम कृष्ण की धरती वाला भारत देश महान्
इस धरती ने सारे जग को जीवन दान दिया है
सत्य शिव सुन्दरम् का कण कण ने गान किया है
सारी मानवता की जननी तुम प्यार किया है
दुखियारी ममता को जीने का अधिकार दिया है।

(नेपथ्य में स्वर—भारत माता केवल संकेत करती है)

मेरे पुत्रो तुम्ही बताओ देश का गौरव गान
बढ़ो [illegible] मेरी संतानों का दुनिया में सम्मान
तुम्हें याद होगा मैंने किन किन को जन्म दिया है
मेरे उन पुत्रों ने जग में क्या क्या काम किया है
एक एक कर सभी बताओ तुमको क्या क्या याद
निज प्रदेश का ध्यान हो मुख में [illegible] [illegible]।

(कविता नेपथ्य से) (केवल संकेत करता है)

राजस्थानी

मैं राजस्थानी हूँ मेरा जन्म भूमि [illegible]
[illegible]

मेरे प्राणों में मुखरित है सारा राजस्था
जन्मे जहा प्रताप और सागा से वीर महा
अमर सिंह वाली कटार को जिसने जन्म दिया
प्रेम दिवानी मीरा ने हस कर विष पान किया
मान बान पर मर मिटने का मुझ में अब भी दम
पद्मिनियो के जौहर की अब तक भी राख गरम
मेरी धरती ने अब तक भी कब हिम्मत हारी
समर भूमि में चेतक की टापे ही गुजारी
गोरा बादल की कुर्बानी वाला राजस्थान
है ज्वलन्त मेरे प्रदेश में पन्ना का बलिदान

महाराष्ट्रियन

मैं तेरा सेवक हू माता जन्म भूमि महाराष्ट्र
वीर शिवा के सम्मुख है नत-मस्तक सारा राष्ट्र
भूषण के छन्दो में जिसका जीवित है जय गान
वीर शिवा के पौरुष का दुश्मन भी करे बखान
सन् सत्तावन में चमकी जिसकी तलवार पुरानी
आजादी की दीवानी झासी की वीर भवानी
शस्त्रो के प्रबल प्रहारों से मरसी की लहरे दमकी
जिसके एक इशारे पर लाखो तलवारे चमकी
जिस प्रदेश ने झासी की रानी को जन्म दिया है
तिलक गोखले को मेरी धरती ने जन्म दिया है

पंजाबी

भगतसिंह की धरती का मेरा प्रदेश पजाब
तेग बहादुर की जननी वाला प्रदेश पजाब
खूनी दीवारों मे जिसने बच्चो को चिनवाया
मिट-मिट कर बन्दा बैरागी ने तेरा गुण गाया
मेरी धरती ने जग को नानक से सन्त दिये है
पर दुश्मन के लिये हमेशा गुरु गोविन्द दिये है
जीवित है मेरी अब तक जलिया वाली कुर्बानी
अग्रेजों ने लिखी खून से मेरी अमर कहानी
जब भी सर से कफन बाध कर निकला है पजाब
विजयी अब तक हुआ पीठ पर खाया एक न घाव

काश्मीरी

मैं कश्मीरी हूं माता मादरे वतन कश्मीर
केसर की क्यारी रजनी गंध वाला कश्मीर
मेरी धरती मधुर गंध फूलों से लदी हुई है
जिसकी शोभा भारत की अब तक मणि मुकुट रही है
यहीं हुए मकबूल शेरवानी से निर्भय वीर
यहीं शहीद हुआ था वह उस्मान धवल रणधीर
जो धरती का स्वर्ग जुही केसर का पिंग पराग
भारत के उन्नत ललाट का उड़ता परचम पाग

मद्रासी

मद्रासी माता मेरी जन्मभूमि मद्रास
दक्षिण भारत के गौरव का मन में लिये हुलास
सारे दक्षिण का प्रतिनिधि मैं कण-कण पर अभिमान
जगत गुरु शंकराचार्य की जन्मभूमि की शान
वीर बली पुनकेशिन हो या हो टीपू सुल्तान
हैदर अली सरीखों का है याद मुझे बलिदान
संस्कृति के पावन विकास में है मेरी पहचान
दक्षिण भारत की गरिमा की माटी बहुत महान

उत्तर प्रदेश

मैं तेरा अनुचर माता उत्तर प्रदेश निज धाम
जिसकी गलियों में विचरे राधा मोहन घनश्याम
काशी विश्वनाथ की नगरी गंगा का कलगान
जननायक नेहरू की जननी गीता का वरदान
तुलसी सूरा प्रेमचन्द्र को जिसने जन्म दिया है
राम जानकी ने मेरी धरती का मान किया है
हरिद्वार में गंगा बहती यमुना मिले प्रयाग
वृन्दावन की कुन्ज गलिन में कान्हा खेले फाग

गुजराती

मैं गुजराती माता मेरी जन्मभूमि गुजरात
राष्ट्रपिता गांधी की जननी जन्मभूमि गुजरात

नरसी की जननी पटेल ने जिसमें जन्म लिया था
और हैदराबाद सरीखों को भी सबक दिया था
जहां महर्षि दयानन्द की वाणी गुंजारी थी
बापू ने सारी अंग्रेजी सत्ता ललकारी थी
दयानन्द की धरती वाला मेरा धाम महान
राष्ट्रपिता की धरती वाला मेरा धाम महान

बंगाली

मैं बंगाली जननी मेरी जन्मभूमि बंगाल
क्रान्तिकारियों की जननी वाला प्रदेश बंगाल
शान्ति निकेतन कवि रवीन्द्र का करता है यश गान
जन्मे यहीं अमर सेनानी वीर सुभाष महान
जब सुभाष ने सिंह गर्जना से हुंकार लगाई
तब गौतम की धरती ने हंसकर तलवार उठाई।
नेताजी सुभाष को अब तक देश पुकार रहा है
वह नर-नाहर दुश्मन को अब तक ललकार रहा है

भारत माता

सच है पुत्रो जो भी तुमने निज-निज बात कही है
हर प्रदेश मेरा बढ़कर है सबकी बात सही है
इससे बड़ा सत्य लेकिन मैं तुमको बतलाती हूं
निज महानता का रहस्य भी फिर से दोहराती हूं
जब तक हो तुम एक तभी यह गौरव दर्शाता है
प्रबल संगठन के आगे पर्वत भी झुक जाता है
कहो एक होकर तुम सब यह भारत देश महान है
प्यारा देश महान है हम सब का देश महान है

समवेत स्वर में—

भारत देश महान है
प्यारा देश महान है
हम सब का देश महान है।

गीत

• सत्यपाल भारद्वाज 'समीर'

रुक रुक कर चलता हू लेकिन पूछो तो जीवन डगर मे—
जिसकी छाती पर पग रख कर जीवन भर चलता रहता हू ॥

तुम्हें पता क्या पग मे कितने शूल चुभे कितने निकले हैं,
तुम क्या जानो कदम कदम पर कितने कटु अवरोध मिले है,
पथ के सुन्दर सुमन, कली की मुसकानों पर तुम, क्या जानो—
घायल उर के अरमानों के दल के दल कितने मचले हैं।
तुम्हें पता क्या, चार हृदय की हूक, नयन के आंसू पथ पर —
विश्वासों के दीप लिये मैं हंस हंस कर चलता रहता हू ॥

दीपक हू मैं, फूंक रहा हू अपनी खिलती हुई जवानी,
तुम क्या जानो मूक शिखा मे, जलती कितनी करुण कहानी,
जग का पथ आलोकित करने, अपना प्यार जलाकर मैने—
शलभों की अधजली चिता पर जीवन भर जलने की ठानी।
बुझ बुझ कर जलता हू लेकिन घोर तिमिर के उर से पूछो —
जिसकी छाती चीर, रात भर तिल तिल कर जलता रहता हूं ॥

मेरा यौवन क्षणिक, विश्व का लेकिन यह उद्यान अमर है,
तुम्हें पता क्या, मेरे उर मे भावों का तूफान अमर है
तीखे शूलों की नोकों पर, पखुरियों मे प्यार सजो कर—
झरते झरते भी मुस्काता, मेरी यह मुस्कान अमर है।
एक बार खिलता हू, लेकिन मेरे प्रिय माली से पूछो—
जिसकी आंखों के सपनों मे, मैं निशि दिन खिलता रहता हू ॥ •

ऐ वतन !

• रामेश्वर प्रसाद शर्मा 'महबूब'

ऐ वतन ! तेरे चमन के बागबां हो जायेंगे ।
खूबसूरत मालियों के पासबां हो जायेंगे ।।
इस गुलिस्तां के गुलों पर जो उठेगी बदनजर,
उस नजर के वास्ते हम बदगुमां हो जायेंगे ।।
बरगेज ये जमीं और मरकज सबज मेरा,
जो लिया इधर बढ़ो तो हम फ़िज़ा हो जायेंगे ।।
सरफ़रोशी की तमन्ना ज्यों की त्यों इस दिल में है,
खुशनसीबी के लिए हम जां से फ़ना हो जायेंगे ।।
जो जुबां बोली शहादत की भगत आजाद ने,
हूबहू उसके कसम हम तर्जुमां हो जायेंगे ।।
अशआर जो 'महबूब' के औराक पे उभरे हैं आज,
जिक्र उनका क्या करें हम खुदबयां हो जायेंगे ।।

आदमी के प्यार को
यह धुआं सा पी रहा है
आदमी के नूर को
यह धुआं सा पी रहा
हर मांग के सिन्दूर को
एक अजगर सी हवा
हर आग को भरमा रही है
जिन्दगी पर मौत की परछाइयां
गहरा रही है

कल्पना के गह्वरों में
तलिगमा आकाश में
भीड़ के कोलाहलों में
एक मन वीरान में
रो रहा हूं क्योंकि मेरे
देश की हर आत्मा
आज दबती जा रही है
सिसकियों के भार से
जलाती हर एक खुशबू
आग में अंगार से
—और इस स्वाधीनता को
चान्दनी के नाम पर
या कि सूरज की सुनहरी
रोशनी के नाम पर
कालिमा के दायरों में
घुट रहा है आदमी
सर्द आंसू की सतह पर
लुट रहा है आदमी
रोटियों की कल्पना तक
कोठियों में कैद है
आदमी की आदमीयत
मुट्ठियों में कैद है
बन्द कमरों में समय की

इस तरह से बढ़ रहे हैं
फासले इंसान के
और मरते जा रहे हैं
काफिले इंसान के
रोज धरती के न जाने
स्वप्न कितने जल रहे हैं
और धरती धूप में
सूरज हजारों ढल रहे हैं
आज माटी को यहां
फिर से मसीहा चाहिये
पी सके जो विष यहां
सुकरात ऐसा चाहिये
जो कि पर्वत को झुका दे
वक्त की आवाज पर
और सागर को सुखा दे
वक्त की आवाज पर
गीत के हर शब्द को
तलवार की झंकार दे
या कि जो हर सांस को
तूफान की हुंकार दे
बदल सकती है तभी
तस्वीर हिन्दुस्तान की
अन्यथा मिट जायेगी
तस्वीर हिन्दुस्तान की।

मेरा वतन, मेरा वतन !

चिता में जल के पद्मिनी, नुमायाँ काम कर गयी,
उठा के तेग लक्ष्मी, जहाँ में नाम कर गयी,
वह चांद के भी मरके, वह रजिया की कहानियाँ,
यहाँ की नारियों ने भी, दिखाई महत जानियाँ,
वह भर के मांग खून से, मंदा में जो बनी दुल्हन,
मेरा वतन, मेरा वतन !

वह हुस्न देखो ताज का, इमारतों की जान है,
वह इक कुतुबमीनार जो, बलन्दी का निशान है,
देहली की मस्जिद खुशनुमा, बेहतरीन-व-शानदार
आबू के मन्दिर भी हसी, कारीगरी के शाहकार,
अजन्ता की मुसव्वरी, एलोरा का हसीन फन,
मेरा वतन, मेरा वतन !

यह घर है कालीदास का, यह सूर-व-तुलसी का मकां,
गालिब की भूमि है यही, इकबाल का यही जहां,
बंगाल का टैगोर वह, जादू थी जिसकी शायरी,
मीरा वह राजस्थान की, नग़मे हैं जिसकी रसभरी,
अदब यहां का बेबहा, कीमती हैं इल्म-ो-फन
मेरा वतन, मेरा वतन !

यहां के लोग सादा हैं, यहां के लोग खुशवजअ,
यहां के लोग नेकदिल, यहां के लोग खुशतबअ,
है गुफ्तगू शहद भरी, कि बोल मे मिठास है,
है शर्म इनकी आंख मे, कि दूसरो का पास है,
मिसाली इनकी जिन्दगी, पाकीजा है रहन सहन,
मेरा वतन, मेरा वतन !

सदियों पुराना हो चुका, शबाब पर शबाब है,
बडा ही बेमिसाल है, बडा ही लाजवाब है,
यह तो मेरी आबरू, यही तो मेरी शान है,
यही तो मेरी जिन्दगी, यही तो मेरी जान है,
"मुझे तो इस पे नाज है" लुटादूं इस पे जान-ो-तन,
मेरा वतन, मेरा वतन !

प्रस्तुत पुस्तक के लेखकगण

१ श्री श्याम श्रोत्रिय, व. अ.
राजकीय जौहरी उच्च माध्यमिक
विद्यालय लाडनूं (राजस्थान)

२ श्री जगन्नाथ शर्मा 'शास्त्री', व. अ.
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बाड़मेर (राजस्थान)

३ श्री अमरसिंह पाण्डेय, व. अ.
प. स. बैर (जिला भरतपुर)
(राजस्थान)

४ श्री नृसिंह राजपुरोहित,
पुरोहित निवास,
खाण्डप (बाडमेर) राजस्थान

५ श्री करणीदान बारहठ
मालारामपुरा (संगरिया-
श्रीगंगानगर) राजस्थान

६ श्री श्रीनन्दन चतुर्वेदी
१४-३१६ बजाजखाना, घंटाघर
डाकोत पाडा, कोटा–६ (राज०)

७ श्री जी. वी. आजाद
हाथीभाटा,
अजमेर (राजस्थान)

८ श्री ब्रजेश 'चंचल'
शारदा सदन, बृजराजपुरा
कोटा–६ (राजस्थान)

९ श्री भगवतीलाल शर्मा
धनेत (जिला चित्तौड़गढ़)
राजस्थान

१० डॉ० राम गोपाल गोयल
बच्छराज भवन, पुरानी मण्डी,
अजमेर (राजस्थान)

११ डा० राधे श्याम गुप्त
अभिनवन प्रशिक्षण केन्द्र,
माउन्ट आबू (राजस्थान)

१२ डा० शिवकुमार शर्मा
विद्यालय निरीक्षक,
जोधपुर (राजस्थान)

१३ श्री गुरुदत्त शर्मा
उपविद्यालय निरीक्षक,
करौली (राजस्थान)

१४ श्री देवी शंकर शर्मा, स. अ.
राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय
अलियारी (तह० टोडारायसिंह,
जिला टोंक) राजस्थान

१५ श्री अब्दुल मलिकखान
प्रेस रोड, भवानी मण्डी
(तह० पचपहाड़, जिला झालावाड़)
राजस्थान

१६ श्री लक्ष्मी कान्त शर्मा 'ललित'
प्रधानाध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
भाकोला (जिला-चित्तौड़गढ़)
राजस्थान

१७ श्री राजेन्द्र प्रसादसिंह डागी, स अ.
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय
शाहपुरा (जिला भीलवाड़ा) राज०

१८ श्री महेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ
२०/४३ मधुवन श्रीपुरा
कोटा–६ (राजस्थान)

१६ श्री योगेश्वर 'मनुज राजस्थानी'
द्वारा आसारामजी बाठिया का मकान,
टूटियो के पास, गंगाशहर रोड,
बीकानेर (राजस्थान)

२० श्री अर्जुनलाल 'अरविन्द'
राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय,
कोहना (जिला-टोंक) राजस्थान

२१ श्री सीता अग्रवाल, प्रधानाध्यापिका
राजकीय कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय,
शाहपुरा (जिला-भीलवाडा) राज०

२२ श्री गिरिवर गोपाल अलवरी स.अ.
राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय,
नया बास, अलवर (राजस्थान)

२३ श्री पृथ्वीसिंह चौहान, 'प्रेमी'
राजकीय सैकण्डरी स्कूल,
भीण्डर (जिला उदयपुर) राज०

२४ श्री जगदीश 'विमल'
१०२ राधाविलास, कोटा (राज०)

२५ श्री योगेश भटनागर, स. अ.
श्री भैरव रत्न मातृ हायर सैकण्डरी स्कूल,
बीकानेर (राजस्थान)

२६ श्री रघुनाथसिंह शेखावत,
प्रधानाध्यापक,
पीरामल प्राथमिक विद्यालय
बग्गड़ (जिला झूंझनू) राज०

२७ श्री राम निवास शर्मा
भारतीय विद्या मंदिर,
बीकानेर (राजस्थान)

२८ श्री बसन्तीलाल महात्मा, व. अ.
उच्च माध्यमिक विद्यालय,
मावली जंकशन (उदयपुर) राज०

२६ श्रीमती कंचल लता, स. अ.
श्रीमती केसर देवी सेठी राजकीय माध्यमिक बालिका विद्यालय,
लाडनू (राज०)

३० श्री विश्वेश्वर शर्मा
श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहट्टा,
उदयपुर (राजस्थान)

३१ श्री जगदीशचन्द्र शर्मा
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
गिलुण्ड (वाया कपासन, उदयपुर)
राजस्थान

३२ श्री भवरसिंह सहवाल, व. अ.
अमरसर (जयपुर) राजस्थान

३३ श्री विश्वम्भर प्रसाद शर्मा विद्यार्थी
विवेक कुटीर, सुजानगढ़ (राज०)

३४ श्री चतुर कोठारी
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
कांकरोली (उदयपुर) राज०

३५ श्री महावीर योगानन्दी
शिक्षा अधिकारी,
श्रमिक शिक्षा केन्द्र, भदादा बाग,
भीलवाड़ा (राजस्थान)

३६ श्री होतीलाल शर्मा 'पौर्णेय'
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बीबीरानी (जिला-अलवर) राज०

३७ श्री शिवलाल मृदुल स. म
राजकीय माध्यमिक विद्यालय
मावा (जिला-चित्तौड़गढ़), राज०

३८ श्री भगवतीलाल व्यास
विद्या भवन स्कूल,
उदयपुर (राजस्थान)

३९ श्री कुन्दनसिंह तवर 'सजल'
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
गुरारा (खण्डेला), जिला-सीकर
(राजस्थान)

४० श्री नरेन्द्र मिश्र
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय
अरनोद जिला-चित्तौड़गढ़ (राज०)

४१ श्री सत्यपाल भारद्वाज 'समीर'
श्री कल्याण राजकीय उच्च
माध्यमिक विद्यालय,
सीकर (राजस्थान)

४२ श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा 'महबूब'
राजकीय ओसवाल जैन, उच्च
माध्यमिक शाला,
अजमेर (राजस्थान)

४३ श्री बी एन 'अरविन्द'
भारतीय सदन, भवानी मण्डी
(राजस्थान)

४४ श्री मुख्तार दाधीच, म प्र.
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय
नागौर (राजस्थान)

★ ★